न च दग्धो न भग्नश्च भुङ्क्ते संतापमेव च। कथितं देवि वृत्तान्तं कारणं च यथागमम्।
कुण्डानां लक्षणं सर्वं निबोध कथयामि ते ॥३३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्यु० द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

यम उवाच

पूर्णेन्दुमण्डलाकारं सर्वकुण्डं च वर्तुलम्। अतीव निम्नं पाषाणभेदैश्च खचितं सति ॥१॥
न नश्वरं चाऽऽप्रलयं निर्मितं चेश्वरेच्छया। क्लेशदं वै पातकिनां नानारूपं तदालयम् ॥२॥
ज्वलदङ्गाररूपं च शतहस्तशिखान्वितम्। परितः क्रोशमानं च वह्निकुण्डं प्रकीर्तितम् ॥३॥
महच्छब्दं प्रकुर्वद्भिः पापिभिः परिपूरितम्। रक्षितं मम दूतैश्च ताडितैश्चापि संततम् ॥४॥
प्रतप्तोदकपूर्णं च हिंस्रजन्तुसमन्वितम्। महाघोरान्धकारं च पापिसंघेन संकुलम् ॥५॥
प्रकुर्वता काकुशब्दं प्रहारैर्घूर्णितेन च। क्रोशार्धमानं मद्दूतैस्ताडितेन च रक्षितम् ॥६॥

इस प्रकार उसका कारण-वृत्तान्त बता दिया है, जैसा कि शास्त्रों में कहा है। अब कुण्डों के लक्षण बता रहा हूँ, सुनो ॥२९-३३॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में सावित्री-उपाख्यान नामक
बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३२॥

अध्याय ३३

नरक-कुण्डों का लक्षण-वर्णन

यम बोले—पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल के समान सभी (नरक) कुण्ड गोलाकार अत्यन्त नीचे (गहरे) और अनेक भाँति के पत्थरों से खचित हैं ॥१॥ ईश्वर की इच्छा द्वारा ही इनका निर्माण हुआ है, इसलिए प्रलय पर्यन्त इनका नाश नहीं होता है। ये अनेक भाँति के हैं, जो पापियों को दुःख देते हैं ॥२॥ जलते हुए अङ्गार स्वरूप, सौ हाथ की लपटों से युक्त और एक कोस का चौड़ा अग्निकुण्ड कहा गया है ॥३॥ जो महान् घोर शब्द करते (चिल्लाते) हुए पापियों से नित्य भरा रहता है, मेरे दूतगण उस कुण्ड की रक्षा करते हैं और निरन्तर पापियों को ताड़ना देते रहते हैं ॥४॥ अत्यन्त तप्त जल से पूर्ण, हिंसक जानवरों से युक्त, महाघोर अन्धकार रूप, पापीगणों से भरा तथा आधे कोस का विस्तृत 'प्रतप्तोदककुण्ड' है, जहाँ मेरे दूतों द्वारा ताड़ित होने पर पापी लोग (चिल्ला कर) (अपना) शोक और भय प्रकट करते रहते हैं तथा दूत लोग उस कुण्ड की रक्षा करते हैं ॥५-६॥ तप्त और खारे जल से भरा,

अथाभिमन्युतनये ब्रह्मशापः परीक्षिते । बभूव सहसा ब्रह्मन्दैवदोषेण कर्मणा ॥१०४॥
सप्ताहे समतीते तु तक्षकस्त्वां च दङ्क्ष्यति । शशाप शृङ्गी कौशिक्या जलं संस्पृश्य चेति सः ॥१०५॥
राजा श्रुत्वा तत्प्रवृत्तिं गङ्गाद्वारं जगाम सः । तत्र तस्थौ च सप्ताहं शुश्रुवे धर्मसंहिताम् ॥१०६॥
सप्ताहे समतीते तु गच्छन्तं तक्षकं पथि । धन्वन्तरिर्मोचयितुमपश्यद्गन्तुको नृपम् ॥१०७॥
तयोर्बभूव संवादः सुप्रीतिश्च परस्परम् । धन्वन्तरेर्मणिं श्रेष्ठं तक्षकः स्वेच्छया ददौ ॥१०८॥
स ययौ तं गृहीत्वा तु तुष्टः संहृष्टमानसः । तक्षको भक्षयामास नृपं मञ्चकसंस्थितम् ॥१०९॥
राजा जगाम वैकुण्ठं स्मारं स्मारं हरिं गुरुम् । संस्कारं कारयामास पितुर्वै जनमेजयः ॥११०॥
राजा चकार यज्ञं च सर्पसत्राभिधं मुने । प्राणांस्तत्याज सर्पाणां समूहो ब्रह्मतेजसा ॥१११॥
स तक्षकश्च भीतश्च महेन्द्रं शरणं ययौ । सेन्द्रं च तक्षकं हन्तुं विप्रवर्गः समुद्यतः ॥११२॥
अथ देवाश्च मुनयश्चाऽऽययुर्मनसान्तिकम् । तां तुष्टाव महेन्द्रश्च समक्षं भयकातरः ॥११३॥
तत आस्तीक आगत्य मातुर्यज्ञमथाऽऽज्ञया । महेन्द्रतक्षकप्राणान्ययाचे भूमिपं वरम् ॥११४॥
ददौ वरं नृपश्रेष्ठः कृपया ब्राह्मणाज्ञया । यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो दक्षिणां च ददौ मुदा ॥११५॥

हे ब्राह्मण ! इसके उपरान्त अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित को दैव दोषवश सहसा ब्राह्मण -शाप हो गया—'आज के सातवें दिन के व्यतीत होते-होते तक्षक तुम्हें डस लेगा।' यह शाप शृङ्गी ऋषि ने कौशिकी नदी का जल स्पर्श करके दिया था ॥१०४-१०५॥ अनन्तर यह समाचार सुनते ही राजा ने गंगाद्वार (हरिद्वार) को प्रस्थान किया और वहाँ रहकर एक सप्ताह तक धर्मसंहिता (श्रीमद्भागवतपुराण) का श्रवण किया ॥१०६॥ सातवें दिन के व्यतीत होते समय मार्ग में जाते हुए तक्षक को धन्वन्तरि ने देखा, जो राजा को उसके विष से मुक्त कराने के लिए (राजा के यहाँ) जा रहे थे ॥१०७॥ मार्ग में उन दोनों की आपस में अति प्रेमपूर्ण बातें हुईं। जिसके फल- स्वरूप तक्षक ने स्वेच्छया धन्वन्तरि को मणि प्रदान किया और वे उसे लेकर प्रसन्नचित्त हो घर लौट आये। पश्चात् तक्षक ने जाकर ऊँचे मंच पर स्थित राजा को डस लिया ॥१०८-१०९॥ गुरु नारायण का बार-बार स्मरण करता हुआ राजा वैकुण्ठ चला गया और जनमेजय ने अपने पिता का दाह-संस्कार-क्रिया सम्पन्न की ॥११०॥ हे मुने ! तदुपरान्त राजा जनमेजय ने सर्पयज्ञानुष्ठान आरम्भ किया, जिसमें ब्रह्मतेज द्वारा सर्पसमूहों के प्राण आहुति हो रहे थे ॥१११॥ उस समय वह तक्षक भयभीत होकर महेन्द्र की शरण गया। किन्तु (पता लगने पर) ब्राह्मणों ने इन्द्र समेत तक्षक की भी आहुति देनी चाही ॥११२॥ यह जान कर देवगण और मुनिवृन्द मनसा देवी के निकट गये। वहाँ भय से कातर होकर महेन्द्र ने सामने खड़े होकर मनसा देवी की स्तुति की ॥११३॥ इस प्रकार मनसा के प्रसन्न होने पर उसकी आज्ञा से आस्तीक ने उस यज्ञ में जाकर राजा जनमेजय से महेन्द्र और तक्षक के प्राणों की याचना की ॥११४॥ नृपश्रेष्ठ जनमेजय ने ब्राह्मणों की आज्ञा से उन्हें वर प्रदान किया और प्रसन्नतापूर्वक यज्ञ समाप्त कर ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान की ॥११५॥ उपरान्त मुनिगण, देववृन्द

विप्राश्च मुनयो देवा गत्वा च मनसान्तिकम् । मनसां पूजयामासुस्तुष्टुवुश्च पृथक्पृथक् ॥११६॥
शक्रः संभृतसंभारो भक्तियुक्तः सदा शुचिः । मनसां पूजयामास तुष्टाव परमादरात् ॥११७॥
उपचारैः षोडशभिर्बलिं दत्त्वा प्रियं तदा । प्रददौ परितुष्टश्च ब्रह्मन्विप्रसुराज्ञया ॥११८॥
संपूज्य मनसादेवीं प्रययुः स्वालयं च ते । इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥११९॥

नारद उवाच

केन स्तोत्रेण तुष्टाव महेन्द्रो मनसां सतीम् । पूजाविधिं क्रमं तस्याः श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१२०॥

नारायण उवाच

सुस्नातः शुचिराचान्तो धृत्वा धौते च वाससी । रत्नसिंहासने देवीं वासयामास भक्तितः ॥१२१॥
स्वर्गगङ्गाजलेनैव रत्नकुम्भस्थितेन च । स्नापयामास मनसां महेन्द्रो वेदमन्त्रतः ॥१२२॥
वाससी वासयामास वह्निशुद्धे मनोरमे । सर्वाङ्गे चन्दनं लिप्त्वा पाद्यार्घ्यं भक्तिसंयुतः ॥१२३॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् । संपूज्याऽऽदौ देवषट्कं पूजयामास तां सतीम् ॥१२४॥
ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहेत्येवं च मन्त्रतः । दशाक्षरेण[1] मन्त्रेण ददौ सर्वान्यथोचितम् ॥१२५॥

और ब्राह्मणों ने मनसा के समीप जाकर उसकी पूजा और पृथक्-पृथक् स्तुति सम्पन्न की ॥११६॥ इन्द्र ने भक्ति-पूर्वक पवित्रतापूर्ण पूजन-सामग्री साथ लेकर मनसा देवी की पूजा की और परम आदर से उसकी स्तुति की। षोडशोपचार से पूजन करने के अनन्तर इन्द्र ने ब्राह्मणों और देवताओं की आज्ञा से अति प्रसन्न होकर उन्हें प्रिय उपहार अर्पित किया ॥११७-११८॥ मनसा देवी की अर्चना कर के देवगण अपने-अपने घर चले गए। इस भाँति मैंने तुम्हें सब कथा सुना दी, अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥११९॥

नारद बोले—महेन्द्र ने किस स्तोत्र द्वारा पतिव्रता मनसा देवी की स्तुति की और उनके पूजा विधान का क्रम क्या है? इसे मैं सरहस्य जानना चाहता हूँ ॥१२०॥

नारायण बोले—भली भाँति स्नान से पवित्र होकर (महेन्द्र ने) आचमन और दो उज्ज्वल वस्त्र धारण किये। अनन्तर भक्तिपूर्वक देवी को रत्नसिंहासन पर स्थापित किया ॥१२१॥ रत्नों के कलशों में स्थित स्वर्ग-गंगाजल द्वारा महेन्द्र ने वेद मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक मनसा देवी को स्नान कराया ॥१२२॥ और अग्नि की भाँति विशुद्ध एवं मनोरम वस्त्रों से सुसज्जित कर सर्वांग में चन्दन का लेप किया। भक्तिपूर्वक पाद्य-अर्घ्य अर्पित कर के गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और शिवा (दुर्गा) इन छह देवों की अर्चना की। पश्चात् 'ओं ह्रीं श्रीं मनसा देव्यै स्वाहा' इस दशाक्षर मन्त्र द्वारा सब यथोचित उपचार उस पतिव्रता को प्रदान किया। इस प्रकार ब्रह्मा की प्रेरणा से भक्तिपूर्वक और सुप्रसन्न मन से इन्द्रने मनसा देवी को दुर्लभ षोडश उपचार समर्पित किये और अनेक प्रकार

---

१ क. मूलेन ।

उपचारान्षोडशकान्भक्तितो दुर्लभान्हरिः। पूजयामास भक्त्या च ब्रह्मणा प्रेरितो मुदा ॥१२६॥
वाद्यं नानाप्रकारं च वादयामास तत्र वै। बभूव पुष्पवृष्टिश्च नभसो मनसोपरि ॥१२७॥
देव विप्राज्ञया तत्र ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया। तुष्टाव साश्रुनेत्रश्च पुलकाञ्चितविग्रहः ॥१२८॥

महेन्द्र उवाच

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि साध्वीनां प्रवरां पराम्। परात्परां च परमां नहि स्तोतुं क्षमोऽधुना ॥१२९॥
स्तोत्राणां लक्षणं वेदे स्वभावाख्यानतः परम्। न क्षमः प्रकृतिं वक्तुं गुणानां तव सुव्रते ॥१३०॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं कोपहिंसाविवर्जिता। न च शप्तो मुनिस्तेन त्यक्तया च त्वया यतः ॥१३१॥
त्वं मया पूजिता साध्वी जननी च यथाऽदितिः। दयारूपा च भगिनी क्षमारूपा यथा प्रसूः ॥१३२॥
त्वया मे रक्षिताः प्राणाः पुत्रदाराः सुरेश्वरि। अहं करोमि त्वां पूज्यां मम प्रीतिश्च वर्धते ॥१३३॥
नित्यं यद्यपि पूज्या त्वं भवेऽत्र जगदम्बिके। तथाऽपि तव पूजां वै वर्धयामि पुनः पुनः ॥१३४॥
ये त्वामाषाढसंक्रान्त्यां पूजयिष्यन्ति भक्तितः। पञ्चम्यां मनसाख्यायां मासान्ते वा दिने दिने ॥१३५॥
पुत्रपौत्रादयस्तेषां वर्धन्ते च धनानि च। यशस्विनः कीर्तिमन्तो विद्यावन्तो गुणान्विताः ॥१३६॥
ये त्वां न पूजयिष्यन्ति निन्दत्यज्ञानतो जनाः। लक्ष्मीहीना भविष्यन्ति तेषां नागभयं सदा ॥१३७॥
त्वं स्वर्गलक्ष्मीः स्वर्गे च वैकुण्ठे कमलाकला। नारायणांशो भगवाञ्जरत्कारुर्मुनीश्वरः ॥१३८॥

के वहाँ बाजे बजवाये; उसी समय मनसा देवी के ऊपर आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुई। अनन्तर महेन्द्र ने ब्राह्मण, ब्रह्मा, विष्णु और शिव की आज्ञा से पुलकायमान शरीर होकर आँखों में आँसू भरे देवी की स्तुति की ॥१२३-१२८॥

महेन्द्र बोले—हे देवि! मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ, किन्तु इस समय तुम ऐसी श्रेष्ठ देवी की, जो पतिव्रताओं में परम श्रेष्ठ, परात्पर और सर्वोत्तम है, स्तुति करने में असमर्थ हूँ ॥१२९॥ हे सुव्रते! वेद में तुम्हारे गुणों और स्तोत्रों के लक्षण, आख्यान की भाँति स्वभावतः भरे पड़े हैं, जिसे प्रकृति (देवी) भी कहने में असमर्थ हैं ॥१३०॥ तुम शुद्ध-सत्त्व स्वरूप हो, तुममें क्रोध, हिंसा आदि दोष नहीं हैं। यद्यपि मुनि ने तुम्हारा त्याग कर दिया था, किन्तु त्यागने पर भी तुमने उन्हें शाप नहीं दिया। हे साध्वि! मैंने अपनी माता अदिति की भाँति ही तुम्हारी पूजा की है। हे सुरेश्वरि! तुम दया रूप भगिनी और जननी की भाँति क्षमाशीला हो, तुमने ही हमारे प्राणों और पुत्रों एवं स्त्रियों की रक्षा की है ॥१३१-१३२½॥ अतः हे जगदम्बिके! मैं तुम्हारी पूजा कर रहा हूँ। इससे हमारी प्रीति बढ़ती ही जा रही है। यद्यपि तुम संसार में नित्य पूज्या हो, तथापि तुम्हारी पूजा की मैं बार-बार वृद्धि करूँगा। इस प्रकार आषाढ़ मास की संक्रान्ति के दिन जो भक्तिपूर्वक तुम्हारी पूजा करेंगे, तथा मनसा नामक पंचमी में, मास के अन्त में या प्रतिदिन पूजा करते रहेंगे, उनके पुत्र-पौत्र आदि समेत धन की वृद्धि होती रहेगी ॥१३३-१३५½॥ तथा वे यशोभागी, कीर्तिमान, विद्यावान् और गुणी होंगे। एवं जो मनुष्य अज्ञान वश तुम्हारी पूजा न करेंगे, उनकी लोग निन्दा करेंगे, तथा वे लक्ष्मी से वंचित रहेंगे और सदा नागों का भय होता रहेगा ॥१३६-१३७॥ तुम स्वर्ग की लक्ष्मी तथा स्वर्ग एवं वैकुण्ठ की कमला-कला हो। मुनीश्वर भगवान् जरत्कारु नारायण के अंश हैं ॥१३८॥ पिता ब्रह्मा ने हम लोगों के रक्षणार्थ तप, तेज द्वारा मन से तुम्हारी सृष्टि की है। इसी से

तपसा तेजसा त्वां च मनसा ससृजे पिता । अस्माकं रक्षणायैव तेन त्वं मनसाभिधा ॥१३९॥
मनसा देवितुं शक्ता चाऽऽत्मना सिद्धयोगिनी । तेन त्वं मनसादेवी पूजिता वन्दिता भवे ॥१४०॥
यां भक्त्या मनसा देवाः पूजयन्त्यनिशं भृशम् । तेन त्वां मनसादेवीं प्रवदन्ति पुराविदः ॥१४१॥
सत्त्वरूपा च देवी त्वं शश्वत्सत्त्वनिषेवया । यो हि यद्भावयेन्नित्यं शतं प्राप्नोति तत्समम् ॥१४२॥
इन्द्रश्च मनसां स्तुत्वा गृहीत्वा भगिनीं च ताम् । निर्जगाम स्वभवनं भूषावासपरिच्छदाम् ॥१४३॥
पुत्रेण सार्धं सा देवी चिरं तस्थौ पितुर्गृहे । भ्रातृभिः पूजिता शश्वन्नान्या वन्द्या च सर्वतः ॥१४४॥
गोलोकात्सुरभी ब्रह्मंस्तत्राऽऽगत्य सुपूजिताम् । तां स्नापयित्वा क्षीरेण पूजयामास सादरम् ॥१४५॥
ज्ञानस्य कथयामास स्वरूपं सर्वदुर्लभम् । तदा देवैः पूजिता सा स्वर्गलोकं पुनर्ययौ ॥१४६॥
इदं स्तोत्रं पुण्यबीजं तां संपूज्य च यः पठेत् । तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च ॥१४७॥
विषं भवेत्सुधातुल्यं सिद्धस्तोत्रं यदा पठेत् । पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः
सर्पशायी भवेत्सोऽपि निश्चितं सर्पवाहनः ॥१४८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० मनसोपा० तदुत्पत्तिपूजास्तोत्रादिकथनं
नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

तुम्हारा 'मनसा' नाम है ॥१३९॥ तुम मन से पूजा कराने में समर्थ एवं सिद्धयोगिनी हो इसीलिए तुम संसार में मनसा देवी होकर सब की पूजिता और वन्दिता हुई हो ॥१४०॥ जिसे भक्तिपूर्वक देवगण मन से नित्य और बार-बार-पूजते हैं, इसी कारण प्राचीन वेत्ताओं ने तुम्हें मनसा देवी कहा है ॥१४१॥ निरन्तर सत्त्व सेवन करने के नाते तुम सत्त्वस्वरूपा देवी हो। इस भाँति जो प्रेमपूर्वक तुम्हें जो कुछ अर्पित करता है, वह सौ गुना होकर उसे पुनः प्राप्त होता है। ॥१४२॥ इन्द्र ने अपनी भगिनी मनसा देवी की स्तुति की और वस्त्राभूषणों से विभूषित कर के उसे अपने भवन ले गये ॥१४३॥ अनन्तर वह देवी पुनः अपने पुत्र समेत पिता के घर आकर वहाँ चिरकाल तक रही। वह निरन्तर अपने भ्राताओं (देवों) द्वारा पूजित है, दूसरी (देवी) सबकी वन्द्या नहीं है। हे ब्रह्मन्! अनन्तर गोलोक से आकर सुरभी ने उस सुपूजित मनसा देवी को क्षीर से स्नान कराया और सादर उसका पूजन किया तथा उसे ज्ञान का सर्वदुर्लभ स्वरूप बताया। उस समय देवों द्वारा पूजित होने पर वह देवी पुनः स्वर्ग-लोक चली गयी ॥१४४-१४६॥ उस (देवी) की पूजा कर के जो इस पुण्य रूप स्तोत्र का पाठ करता है, उसे नाग-भय नहीं होता है तथा उसके वंश में उत्पन्न होने वाले किसी को भी वह भय नहीं होता है ॥१४७॥ उसके स्तोत्र सिद्ध कर के पाठ करने पर विष भी अमृत हो जाता है। पाँच लाख जप करने पर मनुष्य को उसके स्तोत्र की सिद्धि प्राप्त होती है तब वह निश्चित सर्प पर शयन कर सकता है और सर्पों को वाहन भी बना सकता है ॥१४८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद-विषयक मनसोपाख्यान में मनसा की उत्पत्ति, पूजा और स्तोत्र आदि कथन नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥४६॥

तप्तक्षारोदकैः पूर्णं नक्रैश्च परिवेष्टितम् । संकुलं पापिभिश्चैव क्रोशमानं भयानकम् ॥७॥
त्राहीति शब्दं कुर्वद्भिर्मम दूतैश्च ताडितैः । प्रचलद्भिरनाहारैः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकैः ॥८॥
विण्मूत्रैरेव पूर्णं च क्रोशमानं च कुत्सितम् । अतिदुर्गन्धिसंयुक्तं व्याप्तं पापिभिरेव च ॥९॥
ताडितैर्मम दूतैश्चाप्यनाहारैरुपद्रवैः[1] । रक्षेति शब्दं कुर्वद्भिस्तत्कीटैरेव भक्षितम् ॥१०॥
तप्तमूत्रद्रवैः पूर्णं मूत्रकीटैश्च संकुलम् । युक्तं महापापिभिश्च तत्कीटैर्दंशितं सदा ॥११॥
गव्यूतिमानं ध्वान्ताक्तं शब्दकृद्भिश्च संततम् । मद्दूतैस्ताडितैर्घोरैः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकैः ॥१२॥
श्लेष्मपूर्णं क्रोशमितं वेष्टितं चेष्टितैः सदा । तद्भोजिभिः पापिभिश्च तत्कीटैर्भक्षितैः सदा ॥१३॥
क्रोशार्धं गरपूर्णं च गरभोजिभिरन्वितम् । गरकीटैर्भक्षितैश्च पापिभिः पूर्णमेव च ॥१४॥
ताडितैर्मम दूतैश्च शब्दकृद्भिश्च कम्पितैः । सर्पाकारैर्वज्रदंष्ट्रैः शुष्ककण्ठैः सुदारुणैः ॥१५॥
नेत्रयोर्मलपूर्णं च क्रोशार्धं कीटसंयुतम् । पापिभिः संकुलं शश्वद्द्रवद्भिः कीटभक्षितैः ॥१६॥
वसारसेन पूर्णं च क्रोशतुर्यं सुदुःसहम् । तद्भोजिभिः पातकिभिर्व्याप्तं दूतैश्च ताडितैः ॥१७॥
शुक्रपूर्णं क्रोशतुर्यं शुक्रकीटैश्च भक्षितैः । क्रन्दद्भिः पापिभिः शश्वत्संकुलं व्याकुलैर्भिया ॥१८॥

मगरों (घड़ियालों) से घिरा, पापियों से परिपूर्ण तथा एक कोस का विस्तृत एवं भीषण वह 'तप्तक्षारोदकुण्ड' है, जिसमें मेरे दूतों द्वारा ताड़ित होने पर पापीगण त्राहि-त्राहि (बचाओ-बचाओ) कहते हैं। वे उसमें सदैव चलते-फिरते रहते हैं और भोजन न मिलने से उनके कण्ठ, होंठ एवं तालु सूखे रहते हैं ॥७-८॥ 'विण्मूत्रकुण्ड' विष्टा और मूत्र से परिपूरित, एक कोस का विस्तृत, निन्दित, अति दुर्गन्धयुक्त एवं उन पापियों से भरा रहता है, जो अनाहारी (भूखे) रह कर उपद्रवकारी मेरे दूतों द्वारा ताड़ित होने पर (हमारी) 'रक्षा करो' ऐसा चिल्ला कर कहते हैं और वहाँ के कीड़े उन्हें (काट-काट कर) खाया करते हैं ॥९-१०॥ तप्त मूत्र से भरा, मूत्र वाले कीड़ों से युक्त, महान्-पापियों से आच्छन्न 'मूत्रकुण्ड' है जो दो कोस का विस्तृत तथा अन्धकार से ढँका है, जहाँ उसके कीड़ों द्वारा पापीगण सदैव काटे जाते हैं, और मेरे दूतों द्वारा ताड़ित होने पर निरन्तर चिल्लाते रहते हैं, जिससे उनके कण्ठ, होंठ और तालु सूखे रहते हैं ॥११-१२॥ 'श्लेष्मकुण्ड' कफ से भरा, एक कोस का विस्तृत एवं उन कफभोजी पापियों से घिरा रहता है, जिन्हें वहाँ के कीड़े सदैव खाया करते हैं ॥१३॥ 'विषकुण्ड' आधे कोस का विस्तृत, विष से भरा और विषभोजी पापियों से युक्त रहता है, जिन्हें विष के कीड़े खाया करते हैं, सर्पाकार और वज्र दाँतों वाले एवं अति भयंकर मेरे दूतों द्वारा ताड़ना देने पर वे (पापी) काँपते और चिल्लाते रहते हैं इससे इनके कण्ठ सूखे रहते हैं ॥१४-१५॥ नेत्रमलकुण्ड, आधे कोस के विस्तार वाला, कीड़ों से युक्त तथा उन पापी समूहों से भरा है, जो निरन्तर कीड़ों के खाने के कारण पिघले-से रहते हैं ॥१६॥ वसा (चर्बी) के रस से भरा, चार कोस का विस्तृत, अति असह्य एवं चर्बी खाने वाले पापियों से आच्छन्न 'वसाकुण्ड' है, जहाँ पापी जीव दूतों द्वारा नित्य ताड़ित होते हैं ॥१७॥ शुक्र (वीर्य) से भरा, चार कोस का विस्तृत, 'शुक्रकुण्ड' व्याकुल एवं भयभीत उन पापी समूहों से निरन्तर भरा रहता है, जिन्हें वीर्य के कीड़े निरन्तर काटते हैं और वे

---

१ क. तदाकारै० ।

दुर्गन्धिरक्तपूर्णं च वापीमानं गभीरकम् । तद्भोजिभिः पापिभिश्च संकुलं कीटभक्षितैः ॥१९॥
पूर्णं नेत्राश्रुभिर्नृणां वाप्यर्धं पापिभिर्युतम् । ताडितैर्मम दूतैश्च तद्भक्ष्यैः कीटभक्षितैः ॥२०॥
नृणां गात्रमलैः पूर्णं तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युतम् । ताडितैर्मम दूतैश्च व्यग्रैश्च कीटभक्षितैः ॥२१॥
कर्णविट्परिपूर्णं च तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युतम् । वापीतुर्यप्रमाणं च रुदद्भिः कीटभक्षितैः ॥२२॥
मज्जापूर्णं नराणां च महादुर्गन्धिसंयुतम् । महापातकिभिर्युक्तं वापीतुर्यप्रमाणकम् ॥२३॥
परिपूर्णं स्निग्धमांसैर्मम दूतैश्च ताडितैः । पापिभिः संकुलं चैव वापीमानं भयानकम् ॥२४॥
कन्याविक्रयिभिश्चैव तद्भक्ष्यैः कीटभक्षितैः । त्राहीति शब्दं कुर्वद्भिस्त्रासितैश्च भयानकम् ॥२५॥
वापीतुर्यप्रमाणं च नखादिकचतुष्टयम् । पापिभिः संकुलं शश्वन्मम दूतैश्च ताडितैः ॥२६॥
प्रतप्ताम्रकुण्डं ताम्रपर्युन्मुखान्वितम् । ताम्राणां प्रतिमालक्षैः प्रतप्तैरावृतं सदा ॥२७॥
प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टै रुदद्भिः पापिभिर्युतम् । गव्यूतिमानं विस्तीर्णं मम दूतैश्च ताडितैः ॥२८॥
प्रतप्तलोहधारं च ज्वलदङ्गारसंयुतम् । लौहानां प्रतिमालक्षैः प्रतप्तैरावृतं सदा ॥२९॥

चिल्लाया करते हैं ॥१८॥ दुर्गन्ध वाले रक्त से पूर्ण, बावली के समान विस्तृत एवं गम्भीर 'रक्तकुण्ड' है। वह रक्त भोजन करने वाले पापीगणों से, जिन्हें उसके कीड़े नित्य खाया करते हैं, व्याप्त है ॥१९॥ अश्रुकुण्ड आँसुओं से परिपूर्ण, बावली के आधे भाग के समान विस्तृत और उन पापियों से भरा है, जिन्हें (मेरे) दूतगण ताड़ित करते हैं और वहाँ के कीड़े (काट-काट कर) खाया करते हैं तथा जो (पापी) आँसुओं का भक्षण करते हैं ॥२०॥ मनुष्यों के शरीर-मल से पूर्ण होने वाला 'गात्रमलकुण्ड' उसके भक्षण करने वाले पापियों से युक्त रहता है, जिन्हें दूतगण निरन्तर पीटते हैं और कीड़े (काट-काट कर) खाते हैं। इसी से वे पापी लोग सदैव व्यग्र (दुःखी) रहते हैं ॥२१॥ कान के मल से परिपूर्ण रहने वाला कर्णविट्-कुण्ड चार बावली के समान विस्तृत है। वह उन मलभोजी पापियों से भरा है, जिन्हें कीड़े खाते हैं और वे (केवल) सहन किया करते हैं ॥२२॥ मनुष्यों की मज्जा से भरा रहने वाला 'मज्जाकुण्ड' महादुर्गन्धपूर्ण है, जो चार बावलियों के समान विस्तृत है ॥२३॥ स्निग्ध मांस से भरा रहने वाला 'मांसकुण्ड' बावली के समान विस्तृत और भीषण है। उसमें पापीगण भरे पड़े रहते हैं, जिन्हें हमारे दूतगण ताड़ना दिया करते हैं। उसमें कन्या के विक्रेता लोग वही खाकर रहते हैं और वहाँ के कीड़ों के काटने पर वे 'रक्षा करो रक्षा करो' ऐसा भयभीत होकर चिल्लाते रहते हैं ॥२४-२५॥ नख आदि के चारों कुण्ड चार बावलियों के प्रमाण विस्तृत, एवं उन पापियों से भरे रहते हैं, जिन्हें निरन्तर मेरे दूतगण ताड़ना देते हैं ॥२६॥ प्रतप्ताम्रकुण्ड के ऊपर चारों ओर ताँबा लगा है, उस कुण्ड में ताँबे की लाखों प्रतिमाएँ (मूर्तियाँ) हैं जो सदैव अति संतप्त रहती हैं। वहाँ पापियों को प्रत्येक प्रतिमाओं का गाढ़ालिङ्गन करना पड़ता है, जिससे वे निरन्तर रुदन करते रहते हैं और मेरे दूतगण उन्हें पीटते रहते हैं, वह कुण्ड दो कोस का विस्तृत है ॥२७-२८॥ प्रतप्त लोहे की धार वाला कुण्ड, जलते हुए अंगारों से भरा रहता है। वह लोहे की लाखों संतप्त प्रतिमाओं से घिरा है, पापियों को उन प्रत्येक मूर्तियों का निरन्तर गाढ़ालिङ्गन करना पड़ता है, जिससे वे भयभीत होकर उससे विचलित (अलग) होने की

प्रत्येकं सर्वसंश्लिष्टैः शश्वद्विचलितैर्भिया । रक्ष रक्षेति शब्दं च कुर्वद्भिर्दूततताडितैः ॥३०॥
महापातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् । भयानकं ध्वान्तयुक्तं लौहकुण्डं प्रकीर्तितम् ॥३१॥
घर्मकुण्डं तप्तसुराकुण्डं वाप्यर्धमेव च । तद्भोजिभिः पापिभिश्च व्याप्तं मद्दूततताडितैः ॥३२॥
अधः शाल्मलिवृक्षस्य तीक्ष्णकण्टककुण्डकम् । लक्षपौरुषमानं च क्रोशमानं च दुःखदम् ॥३३॥
धनुर्मानैः कण्टकैश्च सुतीक्ष्णैः परिवेष्टितम् । प्रत्येकं कण्टकैर्विद्धं महापातकिभिर्युतम् ॥३४॥
वृक्षाग्रान्निपतद्भिश्च मम दूतैश्च ताडितैः । जलं देहीति शब्दं च कुर्वद्भिः शुष्कतालुकैः ॥३५॥
महाभयातिव्यग्रैश्च दण्डसंभिन्नमस्तकैः । प्रचलद्भिर्यथा तप्ततैले जीविभिरेव च ॥३६॥
विषौघैस्तक्षकादीनां पूर्णं च क्रोशमानकम् । तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥३७॥
प्रतप्ततैलपूर्णं च कीटादिपरिवर्जितम् । तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं 'दग्धगात्रैश्च वेष्टितैः ॥३८॥
काकुशब्दं प्रकुर्वद्भिश्चलद्भिर्दूततताडितैः । महापातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥३९॥
शस्त्रकुण्डं ध्वान्तयुक्तं क्रोशमानं भयानकम् । शूलाकारैः सुतीक्ष्णाग्रैर्लौहशस्त्रैश्च वेष्टितम् ॥४०॥
शस्त्रतल्पस्वरूपंच क्रोशतुर्यप्रमाणकम् । पातकिभिर्वेष्टितं च कुन्तविद्धैश्च वेष्टितम् ॥४१॥

चेष्टा करते हैं, किन्तु असफल रहते हैं। ऊपर से यमदूतों के मारने पर वे 'रक्ष-रक्ष' कहते हुए चिल्लाया करते हैं ॥२९-३०॥ महापातकियों से युक्त, चार कोस का विस्तृत, भयानक और अन्धकारपूर्ण लौहकुण्ड कहलाता है ॥३१॥ घर्मकुण्ड और तप्त सुराकुण्ड बावली के आधे भाग के प्रमाण विस्तृत हैं और उन पापीगणों से व्याप्त हैं, जो मेरे दूतों द्वारा पीटे जाते हैं और वही (तप्त सुरा) पीते हैं ॥३२॥ सेमर वृक्ष के नीचे तीक्ष्ण (तेज) कण्टक (काँटे वाला) एक कुण्ड है, जो लाखों पुरुषों को अपने में अँटाने वाला, एक कोस का विस्तृत एवं दुःखदायक है तथा धनुषप्रमाण तीक्ष्ण काँटों से घिरा है ॥३३-३४॥ उन प्रत्येक काँटों में महापातकी गण गुथे रहते हैं, जो उस सेमर वृक्ष के ऊपरी भाग से गिराए जाते हैं और दूतों द्वारा ताड़ित होते हैं। वे हमें 'जल पिला दो' चिल्ला कर कहते रहते हैं, उनके तालू सूखे हुए रहते हैं और डण्डे से उनके शिर फोड़े जाते हैं। खौलते हुए तेल में दौड़ते हुए जीव की भाँति वे पापीगण महाभय से अति दुःखी होते रहते हैं ॥३५-३६॥ तक्षक आदि साँपों के विष-समूहों से परिपूर्ण, एक कोस का विस्तृत और उसके भक्षण करने वाले पापियों से युक्त एक कुण्ड है जहाँ पापी लोग हमारे दूतों द्वारा नित्य ताड़ित होते हैं ॥३७॥ प्रतप्त तैलकुण्ड, अत्यन्त खौलते हुए तेल से भरा रहता है, जिसमें कीड़े आदि भी नहीं रहते। पापी लोग उसी का भक्षण करते हैं और उनके कोमल अंगों में वह चारों ओर लगाया जाता है ॥३८॥ ऊपर से यमदूत उन्हें पीटते हैं जिससे वे अधीर होकर चिल्लाते और उसमें दौड़ते हैं। इस प्रकार महान् पापियों से भरा हुआ यह कुण्ड चार कोस तक विस्तृत है ॥३९॥ अन्धकारपूर्ण, एक कोस तक विस्तृत, भयानक शूलाकार एवं अति तीक्ष्ण अग्रभाग (नोक) वाले लौह शस्त्रों से घिरा हुआ शस्त्रकुण्ड है ॥४०॥ शस्त्रों की शय्या के समान चार कोस तक विस्तृत कुन्त (भाले) से घिरा वह कुण्ड है, जिसके प्रत्येक फल में छेदे हुए पापी लटके रहते हैं ॥४१॥ ऊपर

१क. स्निग्ध० ।

ताडितैर्मम दूतैश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकैः। कीटैः संपीड्यमानैश्च सर्पयानैर्भयङ्करैः ॥४२॥
तीक्ष्णदन्तैश्च विकृतैर्व्याप्तं ध्वान्तयुतं सति। महापातकिभिर्युक्तं भीतैर्वा कीटभक्षितैः।
रुदद्भिः क्रोशमानं च मम दूतैश्च ताडितैः ॥४३॥
अतिदुर्गन्धिसंयुक्तं क्रोशार्धं पूयसंयुतम्। तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥४४॥
[1]द्विगव्यूतिप्रमाणं च हिमतोयप्रपूरितम्। तालवृक्षप्रमाणैश्च सर्पकोटिभिरावृतम् ॥४५॥
सर्पवेष्टितगात्रैश्च पापिभिः सर्पभक्षितैः। संकुलं शब्दकृद्भिश्च मम दूतैश्च ताडितैः ॥४६॥
कुण्डत्रयं मशादीनां पूर्णं च मशकादिभिः। सर्वं क्रोशार्धमात्रं च महापातकिभिर्युतम् ॥४७॥
हस्तपादादिभिर्बद्धैः क्षत्रैः क्षतजलोहितैः। हाहेति शब्दं कुर्वद्भिः प्रचलद्भिश्च संततम् ॥४८॥
वज्रवृश्चिकयोः कुण्डं ताभ्यां च परिपूरितम्। वाप्यर्धं पापिभिर्युक्तं वज्रवृश्चिकदंशितैः ॥४९॥
कुण्डत्रयं शरादीनां तैरेव परिपूरितम्। तैर्विद्धैः पापिभिर्युक्तं वाप्यर्धं रक्तलोहितैः ॥५०॥
तप्तपङ्कोदकैः पूर्णं सध्वान्तं गोलकुण्डकम्। कीटैः संपीड्यमानैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम् ॥५१॥
वाप्यर्धं परिपूर्णं च जलस्थैर्नक्रकोटिभिः। दारुणैर्विकृताकारैर्भक्षितैः पापिभिर्युतम् ॥५२॥

से मेरे दूतगण उन्हें ताड़ित करते हैं, जिससे उनके कण्ठ, होंठ और तालू सूख जाते हैं। भयंकर सर्पयानों और तीक्ष्ण दाँतों एवं विकृत कीटों से व्याप्त तथा अंधकारपूर्ण और एक कोस का विस्तृत 'कृमिकुण्ड है, जिसमें भयभीत महापातकी भरे पड़े रहते हैं, जिन्हें वे कीड़े खाया करते हैं और दूतों द्वारा पीटे जाने के कारण वे रुदन किया करते हैं ॥४२-४३॥ अतिदुर्गन्धपूर्ण एवं आधे कोस का विस्तृत पूय (पीब) का कुण्ड है जिसमें वे पापी गण भरे रहते हैं, जो वही भोजन भी करते हैं और उन्हें हमारे दूत नित्य पीटा करते हैं ॥४४॥ चार कोस का विस्तृत, बर्फजल से परिपूर्ण और ताड़ वृक्ष के समान आकार वाले करोड़ों साँपों से सर्पकुण्ड घिरा है। उसमें पापीगण भरे पड़े हैं, जिनके शरीर में साँप लिपटे और काटते रहते हैं, ऊपर से यमदूत गण मारा-पीटा करते हैं जिससे वे पापीगण निरन्तर चिल्लाते रहते हैं ॥४५-४६॥ तीन कुण्ड मसा मच्छरों आदि के हैं जो मशक (मसों) से भरे रहते हैं, वे सभी कुण्ड आधे-आधे कोस में फैले हुए एवं महापापियों से संयुत हैं ॥४७॥ वहाँ हाथ पैर बँधे, रुधिर से ओत-प्रोत (लथपथ) तथा हाय-हाय शब्द करते हुए पापी लोग निरन्तर चलते रहते हैं ॥४८॥ वज्र और बिच्छुओं के कुण्ड वज्र और बिच्छुओं से परिपूर्ण, बावली के आधे भाग के समान विस्तृत एवं उन पापियों के समूहों से भरे पड़े हैं जिन्हें वज्र तथा बिच्छू गण निरन्तर काटते रहते हैं ॥४९॥ बाण आदि के तीन कुण्ड हैं, जो उन्हीं से भरे और उन्हीं से छिदे पापियों से पटे हैं जो रक्तलोहित (रुधिर से लाल) वर्ण के दिखायी देते हैं और वे कुण्ड बावली के आधे भाग के समान विस्तृत हैं ॥५०॥ गोलकुण्ड तप्त कीचड़ जल से भरा हुआ एवं अन्धकारमय है और वहाँ के कीड़ों के काटने से अतिसंपीड़ित पापी गणों से परिपूर्ण है ॥५१॥ वह कुण्ड बावली के आधे भाग के समान विस्तृत है। नक्रकुण्ड जल में रहने वाले करोड़ों मगरों (घड़ियालों) से परिपूर्ण है, जो भीषण रूप एवं विकृत आकार वाले हैं और जिनको वे काटते रहते हैं, उन पापियों से घिरा है ॥५२॥

१क. त्रिग०

विण्मूत्रश्लेष्मभक्ष्यैश्च संयुक्तं शतकोटिभिः । काकैश्च विकृताकारैर्धनुर्लक्षं च पापिभिः ॥५३॥
संचालवाजयोः कुण्डं ताभ्यां च परिपूरितम् । भक्षितैः पापिभिर्युक्तं शब्दकृद्भिश्च संततम् ॥५४॥
धनुः शतं वज्रयुक्तं पापिभिः संकुलं सदा । शब्दकृद्भिर्वज्रदग्धैरन्तर्ध्वान्तमयं सदा ॥५५॥
वापीद्विगुणमानं च तप्तप्रस्तरनिर्मितम् । ज्वलदङ्गारसदृशं[1] चलद्भिः पापिभिर्युतम् ॥५६॥
क्षुरधारोपमैस्तीक्ष्णैः पाषाणैर्निर्मितं परम् । महापातकिभिर्युक्तं क्षतं क्षतजलोहितैः ॥५७॥
दुर्गन्धिलालापूर्णं च तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युतम् । क्रोशमानं गभीरं च मम दूतैश्च ताडितैः ॥५८॥
[2]तप्ततोयेऽञ्जनाकारैः परिपूर्णं धनुःशतम् । चलद्भिः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥५९॥
पूर्णं चूर्णद्रवैः क्रोशमानं पापिभिरन्वितम् । तद्भोजिभिः प्रदग्धैश्च मम दूतैश्च ताडितैः ॥६०॥
कुण्डं कुलालचक्राभं घूर्णमानं[3] च संततम् । सुतीक्ष्णषोडशारं च घूर्णितैः पापिभिर्युतम् ॥६१॥
अतीव वक्रं निम्नं च द्विगव्यूतिप्रमाणकम् । कन्दराकारनिर्माणं तप्तोदकसमन्वितम् ॥६२॥
महापातकिभिर्युक्तं भक्षितैर्जलजन्तुभिः । प्रचलद्भिः शब्दकृद्भिर्ध्वान्तियुक्तं भयानकम् ॥६३॥

इसी भाँति विष्ठा, मूत्र, श्लेष्मा (कफ) खाने वाले तथा विकृत आकार वाले कौओं तथा पापियों से युक्त 'विण्मूत्रश्लेष्म-कुण्ड' है, जिसका विस्तार एक लाखधनुष के बराबार है ॥५३॥ संचाल और बाजकुण्ड संचाल और बाज पक्षियों से परिपूर्ण है तथा उन पापियों के समूह उसमें भरे पड़े हैं, जिन्हें वे नित्य (काट कर) खाया करते हैं और इसी कारण वे निरन्तर चिल्लाते रहते हैं ॥५४॥ सौ धनुष के प्रमाण विस्तृत, वज्रयुक्त, सदा भीतर अन्धकारपूर्ण एवं उन पापियों से वज्रकुण्ड भरा पड़ा है, जो वज्र से दग्ध होने के कारण सदैव चिल्लाहट मचाये रहते हैं ॥५५॥ बावली के दुगुने प्रमाण में विस्तृत, तप्त पत्थरों से बना तप्तपाषाणकुण्ड है, जो जलते हुए अंगारे के समान दिखायी देता है। उस पर पापीगण सदा चलते रहते हैं ॥५६॥ तीक्ष्णपाषाण कुण्ड क्षुर (नाई के स्तुरा) के समान तीक्ष्ण (तेज) पत्थरों से रचित तथा उन महापातकियों से परिपूर्ण, है, जो रुधिरों से भीगे एवं घावों से युक्त हैं ॥५७॥ लालाकुण्ड दुर्गन्ध लार से भरा और उसके भक्षण करने वाले पापियों से परिपूर्ण एक कोस का विस्तृत तथा गम्भीर है। वहाँ मेरे दूत उन पापियों को (ऊपर से) ताड़ना देते रहते हैं ॥५८॥ खौलते हुए जल का कुण्ड अंजन की भाँति काले रंग से परिपूर्ण, सौ धनुष के समान विस्तृत एवं पापियों से भरा है, जो मेरे दूतों के द्वारा ताड़ित होने के कारण उसमें चलते रहते हैं ॥५९॥ चूर्णकुण्ड द्रवीभूत (पिघले हुए) चूर्ण से परिपूर्ण, एक कोस का विस्तृत तथा उन पापियों से भरा है, जो यही (चूर्ण) भोजन करते, उसमें जलते रहते एवं मेरे दूतों से ताड़ित होते रहते हैं ॥६०॥ कुम्हार के चक्के के समान चक्रकुण्ड निरन्तर घूमा करता है, जिसमें अत्यन्त तीक्ष्ण सोलह आरे बने हैं। उस पर बैठाये गये पापी लोग निरन्तर घूमते रहते हैं ॥६१॥ अत्यन्त वक्र (टेढ़ा), गहरा चार कोश का विस्तृत, कन्दरा (गुफा) के समान बना एवं खौलते हुए जल से भरा एक कुण्ड है ॥६२॥ जो अन्धकारपूर्ण एवं भीषणाकार है। उसमें महापातकी गण भरे पड़े हैं, जिन्हें वहाँ के जलजन्तु नित्य खाया करते हैं जिससे वे चिल्लाते हुए चलते रहते हैं ॥६३॥ विकृताकार एवं अति भीषण स्वरूप वाले करोड़ों कछुओं से कूर्मकुण्ड भरा

१क.० रसंभूतं च० । २क.० तोयाञ्ज० । ३ख. घूर्ण्यमा० ।

कोटिभिर्विकृताकारैः कच्छपैश्च सुदारुणैः । जलस्थैः संयुतं तैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम् ॥६४॥
ज्वालाकलापैस्तेजोभिर्निर्मितं क्रोशमानकम् । शब्दकृद्भिः पापिभिश्च चलद्भिः संयुतं सदा ॥६५॥
क्रोशमानं गभीरं च तप्तभस्मभिरन्वितम् । शश्वच्चलद्भिः संयुक्तं पापिभिर्भस्मभक्षितैः ॥६६॥
तप्तपाषाणलोष्टानां समूहैः परिपूरितम् । पापिभिर्दग्धगात्रैश्च युक्तं वै शुष्कतालुकैः ॥६७॥
क्रोशमानं ध्वान्तमयं गभीरमतिदारुणैः । ताडितैर्मम दूतैश्च दग्धकुण्डं प्रकीर्तितम् ॥६८॥
अत्यूर्मियुक्ततोयं च प्रतप्तक्षारसंयुतम् । नानाप्रकारविकृतं जलजन्तुसमन्वितम् ॥६९॥
द्विगव्यूतिप्रमाणं च गभीरं ध्वान्तसंयुतम् । तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं दंशितैर्जलजन्तुभिः ॥७०॥
चलद्भिः क्रन्दमानैश्च न पश्यद्भिः परस्परम् । उत्तप्तसूर्मिकुण्डं च कीर्तितं च भयानकम् ॥७१॥
असिपत्रवनस्यैवाप्युच्चैस्तालतरोरधः । क्रोशार्धमानकुण्डं च पतत्पत्रसमन्वितम् ॥७२॥
पापिनां रक्तपूर्णं च वृक्षाग्रात्पततां परम् । परित्राहीति शब्दं च कुर्वतामसतामपि ॥७३॥
गभीरं ध्वान्तसंयुक्तं रक्तकीटसमन्वितम् । तदसीपत्रकुण्डं च कीर्तितं च भयानकम् ॥७४॥
धनुःशतप्रमाणं च क्षुराकारास्त्रसंकुलम् । पापिनां रक्तपूर्णं च क्षुरधारं भयानकम् ॥७५॥
सूचीवाश्यास्त्रसंयुक्तं पापिरक्तौघपूरितम् । पञ्चाशद्धनुरायामं क्लेशदं सूचिकामुखम् ॥७६॥

है और पापियों से आच्छन्न है, जिन्हें वहाँ के जलस्थ कछुवे नित्य खाया करते हैं ॥६४॥ ज्वाला-समूह वाले तेज द्वारा रचित, एक कोस का विस्तृत एवं उसमें चलने-फिरने वाले पापियों से ज्वालाकुण्ड भरा है, जो (पापी दण्डित) होने के कारण चिल्लाते रहते हैं ॥६५॥ तप्त भस्म का कुण्ड एक कोस तक विस्तृत एवं गम्भीर है। उसमें निरन्तर चलने-फिरने वाले पापीगण भरे पड़े हैं, जो वही (संतप्त राख) सदैव खाते भी हैं ॥६६॥ एक कुण्ड तप्त पाषाण (पत्थर) और मिट्टी से परिपूर्ण एवं पापी प्राणियों से पटा हुआ है, जिनकी देह जल गयी है और इसी से उनके तालू सूख गए हैं ॥६७॥ जो एक कोस तक विस्तृत, अन्धकारमय तथा गम्भीर है और जहाँ भीषण दूतों द्वारा पापी वृन्द नित्य ताड़ित होते हैं, उसे दग्ध-कुण्ड कहते हैं ॥६८॥ एक कुण्ड असंख्य लहरों से पूर्ण, अत्यन्त तप्त क्षार जल से तथा अनेक भाँति के जलजन्तुओं से युक्त, चार कोस का विस्तृत, गम्भीर, भीतर अन्धकार से आच्छन्न एवं उन पापियों से भरा पड़ा है, जिन्हें वे जलजन्तु सदैव खाया करते हैं और वे पापीगण भी वही खाया करते हैं तथा करुण क्रन्दन करते हुए चलते रहते हैं किन्तु परस्पर एक दूसरे (पापी) को देख नहीं सकते हैं। उस भयानक कुण्ड को 'उत्तप्तसूर्मिकुण्ड' कहा जाता है ॥६९-७१॥ असिपत्रवन (तलवार की धार के समान तीखे पत्ते वाले वृक्षों के वन) के ताड़ वृक्ष के नीचे वाला कुण्ड आधे कोश का विस्तृत, गिरते हुए ताड़ पत्रों से युक्त और उस (ताड़) वृक्ष के अग्र (ऊपरी) भाग से गिराये जाने वाले पापियों के रक्त से भरा हुआ है। पापीगण 'परित्राहि' (बचाओ) जोर से चिल्लाते रहते हैं ॥७२-७३॥ उस गम्भीर, अन्धकारपूर्ण, रक्त वर्ण के कीड़ों से युक्त एवं भयानक कुण्ड को 'असिपत्रकुण्ड' कहते हैं ॥७४॥ सौ धनुष के प्रमाण विस्तृत, क्षुर (नाई के स्तुरे) की भाँति तीक्ष्ण अस्त्रों से परिपूर्ण, भयानक छुरे की धार के सदृश तथा पापियों के रुधिरों से युक्त कुण्ड को क्षुरधार कहते हैं ॥७५॥ सूई के समान नोक वाले अस्त्र से संयुक्त, पापियों के रुधिर से भरा, पचास धनुष के समान विस्तृत एवं दुःखदायी कुण्ड को सूचिकामुख कहा जाता है ॥७६॥ गोधामुखकुण्ड गोधा (गोह) नामक जन्तु के मुख के समान

गोधाह्वजन्तुभेदस्य मुखाकृति भयानकम् । कूपरूपं गभीरं च धनुर्विंशतिमानकम् ॥७७॥
महापातकिनां चैव महाक्लेशकरं परम् । तत्कीटभक्षितानां च नग्नास्यानां च संततम् ॥७८॥
कुण्डं [1]नक्रमुखाकारं धनुःषोडशमानकम् । गभीरं कूपरूपं च पापिष्ठैः संकुलं सदा ॥७९॥
गजेन्द्राणां समूहेन व्याप्तं कुण्डाकृति स्थलम् । गजदन्तहतानां च पापिनां रक्तपूरितम् ॥८०॥
तत्कीटभक्षितानां च दीनशब्दकृतं सदा । धनुःशतप्रमाणं च कीर्तितं गजदंशनम् ॥८१॥
धनुस्त्रिंशत्प्रमाणं च कुण्डं वै गोमुखाकृति । पापिनां दुःखदं चैव गोमुखं परिकीर्तितम् ॥८२॥
भ्रमितं कालचक्रेण संततं च भयानकम् । कुम्भाकारं ध्वान्तयुक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥८३॥
लक्षमानवमानं च गभीरमतिविस्तृतम् । कुत्रचित्तप्ततैलं च कुण्डाभ्यन्तरमन्तिके ॥८४॥
कुत्रचित्तप्तलौहादिकुण्डं ताम्रादिकं तथा । कुत्रचित्तप्तपाषाणकुण्डाभ्यन्तरमन्तिके ॥८५॥
पापिनां च प्रधानैश्च महापातकिभिर्युतम् । परस्परं न पश्यद्भिः शब्दकृद्भिश्च संततम् ॥८६॥
ताडितैर्मम दूतैश्च दण्डैश्च मुसलैस्तथा ॥८७॥
घूर्णमानैः[2] पतद्भिश्च मूर्च्छितैश्च मुहुर्मुहुः । पातितैर्मम दूतैश्चाप्यत्यूर्ध्वात्पतितैः क्षणम् ॥८८॥
यावन्तः पापिनः सन्ति सर्वकुण्डेषु सुन्दरि । ततश्चतुर्गुणाः सन्ति कुम्भीपाके च दुस्तरे ॥८९॥
सुचिरं[3] पतिताश्चैव भोगदेहविवर्जिताः । सर्वकुण्डप्रधानं च कुम्भीपाकं प्रकीर्तितम् ॥९०॥

आकृति वाला, भयानक, कूप की भाँति गम्भीर, और बीस धनुष के समान विस्तृत है जो महापापियों को महान् दुःख देता है। उसके कीड़े नीचे मुख वाले पातकियों को निरन्तर काट कर खाते रहते हैं ॥७७-७८॥ नक्रकुण्ड नाक नामक जलजन्तु के मुख जैसी आकृति वाला, सोलह धनुष विस्तृत, गम्भीर, कूपरूप और पापी समूहों से भरा पड़ा है ॥७९॥ गजेन्द्रों के समूह से व्याप्त एवं कुण्डाकार एक स्थल है, जो गजेन्द्रों के दाँतों द्वारा आहत हुए पापियों के रुधिरों से भरा है ॥८०॥ जिन्हें वहाँ के कीड़े नित्य खाया करते हैं और वे सदैव दीनों की भाँति चिल्लाते रहते हैं। वह कुण्ड सौ धनुष विस्तृत है और गजदंशन नाम से प्रख्यात है ॥८१॥ तीस धनुष विस्तृत, गोमुखाकार और पापियों को दुःख देने वाला जो कुण्ड है, उसे गोमुखकुण्ड कहते हैं ॥८२॥ कालचक्र से युक्त, सदा चक्कर काटने वाला भयानक नरक, जिसकी आकृति घड़े के समान है, कुम्भीपाक कहलाता है, चार कोस के परिमाण वाला वह नरक महान् अन्धकारमय है। उसकी गहराई एक लाख पोरसा (पुरुष के बराबर) है। उस कुण्ड के अन्तर्गत तप्ततैलकुण्ड, लौहादिकुण्ड, ताम्रादिकुण्ड और तप्तपाषाणकुण्ड हैं। महापातक करने वाले प्रधान पापियों से वह भरा है, जो एक दूसरे को नहीं देखते हैं और सभी लोग हमारे दूतों के दण्ड-मुसल द्वारा ताड़ित होने के कारण चिल्लाया करते हैं, बार-बार मूर्च्छित होकर चक्कर काटते हुए गिरते रहते हैं तथा गिरते समय उन्हें हमारे दूतगण क्षणमात्र में अति ऊपर से गिराते हैं ॥८३-८८॥ हे सुन्दरि ! समस्त कुण्डों में जितने पापी रहते हैं उनसे चौगुने पापी उस भयंकर कुम्भीपाक कुण्ड में रहते हैं ॥८९॥ जो भोग देह हीन होकर उसमें अति चिरकाल के लिए डाल दिए गये हैं और वह कुम्भीपाक नरक समस्त कुण्डों में प्रधान है ॥९०॥ जिसमें पापीगण कालसूत्र में आबद्ध

१ख. नरमु० । २ख. ०मानं प० । ३क. रं पात्यमानाश्च भो० ।

कालनिर्मितसूत्रेण निबद्धा यत्र पापिनः । उत्थापिताश्च मद्दूतैः क्षणमेव निमज्जिताः ॥९१॥
निःश्वासबन्धाः सुचिरं कुण्डानामन्तरे तथा । अतीव क्लेशयुक्ताश्च भोगदेहा अनश्वराः ॥९२॥
दण्डेन मुसलेनैव मम दूतैश्च ताडिताः । प्रतप्ततोययुक्तं च कालसूत्रं प्रकीर्तितम् ॥९३॥
अवटः कूपभेदश्च यत्रोदं च तदाकृति । प्रतप्ततोयपूर्णं च धनुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥९४॥
व्याप्तं महापापिभिश्च दग्धगात्रैश्च संततम् । मद्दूतैस्ताडितैः शश्वदवटोदं प्रकीर्तितम् ॥९५॥
यत्तोयस्पर्शमात्रेण सर्वव्याधिश्च पापिनाम् । भवेदकस्मात्पततां यत्र कुण्डे धनुःशते ॥९६॥
सर्वे रुद्धाः पापिनश्च व्यथन्ते यत्र संततम् । हाहेति शब्दं कुर्वन्तस्तदेवारुन्तुदं विदुः ॥९७॥
तप्तपांसुपराकीर्णं ज्वलद्भिस्तु सुदग्धकैः । तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं पांसुभोजं धनुःशतम् ॥९८॥
पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकम्पनम् । पापमात्रेण पापी वै भवेत्पाशेन वेष्टितः ॥९९॥
क्रोशमाने च कुण्डे वै विदुस्तत्पाशवेष्टनम् । धनुर्विंशतिमानं च शूलप्रोतं प्रकीर्तितम् ॥१००॥
पातमात्रेण पापी च शूलेन ग्रथितो भवेत् । पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकम्पनम् ॥१०१॥
अतीव हिमतोये च क्रोशार्धं च प्रकम्पनम् । ददत्येव हि मद्दूता यत्रोल्काः पापिनां मुखे ॥१०२॥

हैं, उन्हें मेरे दूत गण ऊपर उठाते हैं और क्षण भर में उसी में पुनः डुबा देते हैं ॥९१॥ सभी (नरक) कुण्डों के भीतर पापी गण अतिचिरकाल के लिए निःश्वास से बँधे रहते हैं, उनकी भोग (यातना) देह अनश्वर (कभी नष्ट न होने वाली) रहती है एवं अति क्लेशपूर्ण रहती है ॥९२॥ ऊपर से मेरे दूतगण दण्ड, मुसल एवं अस्त्र से उन्हें पीटते हैं। इस भाँति वह अतितप्त जल से पूर्ण रहता है जिसे कालसूत्र नरक कहते हैं ॥९३॥ अवट नरक, कूप के समान होता है, उसमें जल भरा रहता है। इसीलिए उसे कूप का एक भेद मानते हैं। जो अतिसंतप्त जल से पूर्ण, बीस धनुष प्रमाण विस्तृत एवं उन महापापियों से व्याप्त है जिनकी देह निरन्तर जलती रहती है और ऊपर से मेरे दूत ताड़ना देते रहते हैं, उसे अवटोद (नरक) कहा जाता है ॥९४-९५॥ सौ धनुष विस्तृत उस कुण्ड में गिरते ही उसके जल के स्पर्श होने पर पापियों की देह में अकस्मात् व्याधि हो जाती है। सभी पापीगण उसमें अवरुद्ध रह कर पीड़ित होते हैं और निरन्तर हाय, हाय शब्द करके चिल्लाते रहते हैं। इसीलिए विद्वानों ने उस कुण्ड को अरुन्तुद कहा है ॥९६-९७॥ जलती हुई धूलियों से भरा, जलते हुए एवं जली देह वाले उन पापियों से वह कुण्ड पूर्ण रहता है, जो वही जलती हुई धूलि का भोजन करते हैं। वह सौ धनुष विस्तृत है ॥९८॥ जिसमें गिरते ही पापी काँपने लगते हैं और पाश से आबद्ध हो जाते हैं एवं जो एक कोस विस्तृत है। उसे सब पाशवेष्टन (नरक) कहते हैं। शूलप्रोत नामक कुण्ड बीस धनुष के समान विस्तृत है, उसमें गिरते ही पापी गण शूल से छिद उठते हैं। जिसमें गिरते ही पापीगण कम्पित होने लगते हैं तथा जो अति हिम (बर्फ) से भरा एवं आधे कोस तक विस्तृत है, उसे प्रकम्पन नरक कहा गया है। जहाँ हमारे दूतगण पापियों के मुख में उल्का (जलती हुई लकड़ी) डालते हैं, वह बीस धनुष का विस्तृत और उल्काओं से भरा हुआ उल्कामुख नरक है। जो लाखों मनुष्यों को एक साथ रखने वाला, गम्भीर, सौ धनुष

धनुर्विंशतिमानं च तदुल्काभिश्च संकुलम् । लक्षमानवमानं च गम्भीरं च धनुःशतम् ॥१०३॥
नानाप्रकारक्रिमिभिः संयुक्तं च भयानकैः । अत्यन्धकारव्याप्तं यत्कूपाकारं च वर्तुलम् ॥१०४॥
तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं न पश्यद्भिः परस्परम् । तप्ततोयप्रदग्धैश्च चलद्भिः कीटभक्षितैः ।
ध्वान्तेन चक्षुषा चान्धैरन्धकूपं प्रकीर्तितम् ॥१०५॥
नानाप्रकारशस्त्रौर्घैर्यत्र विद्धाश्च पापिनः । धनुर्विंशतिमानं च वेधनं तत्प्रकीर्तितम् ॥१०६॥
दण्डेन ताडिता यत्र मम दूतैश्च पापिनः । धनुः षोडशमानं च तत्कुण्डं दण्डताडनम् ॥१०७॥
निबद्धाश्च महाजालैर्यथा मीनाश्च पापिनः । धनुस्त्रिंशत्प्रमाणं च जालबद्धं प्रकीर्तितम् ॥१०८॥
पततां पापिनां[1] कुण्डे देहाश्चूर्णीभवन्ति च । लौहवेदिनिबद्धान्तः कोटिमानवमानकम् ॥१०९॥
गभीरं ध्वान्तयुक्तं च धनुर्विंशतिमानकम् । मूर्च्छितानां जडानां तद्देहचूर्णं प्रकीर्तितम् ॥११०॥
दलिताः पापिनो यत्र मद्दूतैर्मुसलैः सदा । धनुः षोडशमानं च तत्कुण्डं दलनं स्मृतम् ॥१११॥
पातमात्रे यत्र पापी शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः । वालुकासु च तप्तासु धनुस्त्रिंशत्प्रमाणकम् ॥११२॥
शतमानवमानं च गभीरं ध्वान्तसंयुतम् । जलाहारैर्विरहितं शोषणं तत्प्रकीर्तितम् ॥११३॥

विस्तृत, अनेक भाँति के भीषण कीड़ों से युक्त, अत्यन्त अंधकारपूर्ण, कूपाकार, गोलाकार एवं उसी का भक्षण करने वाले उन पापियों से भरा है, जो एक दूसरे को देखते नहीं हैं, खौलते हुए जल से जलते रहते हैं तथा कीड़ों के काटने से (स्थिर न रह कर) चलते रहते हैं और जहाँ अन्धकारमय होने के कारण आँखों से दिखायी नहीं देता है, उसे अन्धकूप कहते हैं ॥९९-१०५॥ अनेक भाँति के शस्त्र-समूहों से जहाँ पापी के अंग छिन्न-भिन्न होते हैं और जो बीस धनुष प्रमाण विस्तृत है, उसे वेधनकुण्ड कहते हैं ॥१०६॥ हमारे दूत गण जिस स्थान पर पापियों को दण्ड से मारते हैं और सोलह धनुष विस्तृत है, उसे दण्डताड़न कुण्ड कहते हैं ॥१०७॥ मछलियों की भाँति पापीगण जहाँ महान् जालों से बँधे हैं और जो तीस धनुष विस्तृत है, उसे जालबद्ध कुण्ड कहते हैं ॥१०८॥ जिस कुण्ड में पापियों के गिरते ही उनकी देह चूर्ण हो जाती है, और जिसके भीतर लोहे की वेदियाँ बनी हैं, जो करोड़ों मनुष्यों को अपने में अँटा सकता है, तथा गम्भीर, अंधकारमय और बीस धनुष विस्तृत है, वह मूर्च्छितों एवं जड़ों का देहचूर्णकुण्ड कहा जाता है ॥१०९-११०॥ जिस कुण्ड में मेरे दूतों द्वारा मुसलों से पापीगण दले जाते हैं तथा जो सोलह धनुष प्रमाण विस्तृत है, उसे दलनकुण्ड कहा जाता है ॥१११॥ जिस कुण्ड में गिरते ही पापीगण के कण्ठ, होंठ और तालू सूख जाते हैं, जो संतप्त बालुओं से भरा है, तीस धनुष विस्तृत, सौ मनुष्य के प्रमाण वाला, गम्भीर, अंधकारपूर्ण और जल से शून्य है, उसे शोषणकुण्ड कहते हैं ॥११२-११३॥ अनेक भाँति के

---

१. क. ०नां दण्डैर्दे०।

नानाचर्मकषायोदैः परिपूर्णं धनुःशतम् । शतमानवमानं च गभीरं ध्वान्तसंयुतम् ।
दुर्गन्धियुक्तं तद्भुक्त्यैः पापिभिः संकुलं महत् ॥११४॥
शूर्पाकारमुखं कुण्डं धनुर्द्वादशमानकम् । तप्तलोहवालुकाभिः पूर्णं पातकिभिर्युतम् ॥११५॥
अन्तराग्निशिखानां च ज्वालाव्याप्तमुखं सदा । धनुर्विंशतिमानं च यस्य कुण्डस्य सुन्दरि ॥११६॥
ज्वालाभिर्दग्धगात्रैश्च पाणिभिर्व्याप्तमेव यत् । तन्महत्क्लेशदं शश्वत्कुण्डं ज्वालामुखं स्मृतम् ॥११७॥
पातमात्राद्यत्र पापी मूर्च्छितो जिह्मितो[1] भवेत् । तप्तेष्टकाभ्यन्तरितं वाप्यर्धं जिह्मकुण्डकम् ॥११८॥
धूमान्धकारयुक्तं च धूमान्धैः पापिभिर्युतम् । धनुःशतं श्वासबद्धैर्धूमान्धं परिकीर्तितम् ॥११९॥
पातमात्राद्यत्र पापी नागैः संवेष्टितो भवेत् । धनुः शतं नागपूर्णं नागवेष्टनकुण्डकम् ॥१२०॥
षडशीतिश्च कुण्डानि मयोक्तानि निशामय । लक्षणं चापि तेषां च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१२१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्युपा० यमलोकस्थनरककुण्डलक्षणप्रकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

चमड़ों के सड़ने वाले जल से पूर्ण, सौ धनुष विस्तृत, दुर्गन्धभरा एवं उसके भोजन करने वाले पापियों से पटा पड़ा है॥११४॥ सूप के समान मुखवाला कुण्ड, बारह धनुष विस्तृत, तपे हुए लोहे के समान बालुओं से पूर्ण एवं उसके भोजी पातकियों से भरा है॥११५॥ हे सुन्दरि! जिस कुण्ड के भीतर अग्नि की ढेरी पड़ी है, ज्वालाओं से जिसका मुख सदा आच्छन्न है, जो बीस धनुष विस्तृत है, जहाँ ज्वालाओं से जले शरीर वाले पापीगण भरे हैं एवं जो नित्य निरन्तर महान् क्लेश देता है, उसे ज्वालामुख कुण्ड कहते हैं॥११६-११७॥ जिसमें गिरते ही पापीगण व्यथा के मारे मूर्च्छित हो जाते हैं, जिसके भीतरी भाग की ईंटें अति संतप्त रहती हैं, तथा बावली के आधे भाग के समान विस्तृत है, उसे जिह्मकुण्ड कहते हैं॥११८॥ जो धुएँ के अन्धकार से पूर्ण और धुयें से अन्धे बने हुए पापियों से भरा, सौ धनुष विस्तृत एवं श्वास से बँधा है, उसे धूमान्धनरक कहते हैं॥११९॥ जिस कुण्ड में पापीगणों को गिरते ही साँपगण लपेट लेते हैं, और जो सौ धनुष विस्तृत और साँपों से भरा है, उसे नागवेष्टनकुण्ड कहते हैं॥१२०॥ इस प्रकार मैंने छियासी (प्रधान) कुण्डों के नाम और लक्षण बता दिये हैं। अब और क्या सुनना चाहती हो॥१२१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड के सावित्री-उपाख्यान में यमलोकस्थ नरक-कुण्डों के लक्षण-कथन नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३३॥

---

१. ख. व्यथितो०।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

सावित्र्युवाच

हरिभक्तिं देहि मह्यं सारभूतां सुदुर्लभाम् । त्वत्तः सर्वं श्रुतं देव नावशिष्टो वरो मम ॥१॥
किंचित्कथय मे धर्मं श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् । पुंसां लक्षोद्धारबीजं नरकार्णवतारकम् ॥२॥
कारणं मुक्तिकार्याणां सर्वाशुभनिवारणम् । दारणं कर्मवृक्षाणां कृतपापौघहारकम् ॥३॥
मुक्तयः कतिधा सन्ति किं वा तासां च लक्षणम् । हरिभक्तेर्मूर्तिभेदं निषेकस्यापि लक्षणम् ॥४॥
तत्त्वज्ञानविहीना च स्त्रीजातिर्विधिनिर्मिता । किं तज्ज्ञानं सारभूतं वद वेदविदां वर ॥५॥
सर्वदानं ह्यनशनं तीर्थस्नानं व्रतं तपः । अज्ञाने ज्ञानदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥६॥
पितुः शतगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते । मातुः शतगुणैः पूज्यो ज्ञानदाता गुरुः प्रभो ॥७॥

यम उवाच

पूर्वं[1] सर्वो वरो दत्तो यस्ते मनसि वाञ्छितः । अधुना हरिभक्तिस्ते वत्से भवतु मद्वरात् ॥८॥

अध्याय ३४

यम के उपदेश की समाप्ति

सावित्री बोली—हे देव ! तुमसे मैंने सब कुछ सुन लिया है। अब मुझे सुनने के लिए कुछ शेष नहीं रह गया है। अतः भगवान् की भक्ति मुझे देने की कृपा करें, जो सार (तत्त्व) रूप और अत्यन्त दुर्लभ है॥१॥ मुझे धर्म की कुछ चर्चा सुनाने की कृपा करें, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण का गुण-कीर्तन किया गया हो, और वह अनेक मनुष्यों के उद्धार का मूलकारण तथा नरक-सागर से तारने वाला हो ॥२॥ उसी भाँति मुक्तिरूप कार्य का कारण, समस्त अशुभों का नाशक, कर्मरूपी वृक्षों का विदारक और पापसमूहों का अपहर्ता हो॥३॥ मुक्तियाँ कितने प्रकार की होती हैं, उनके लक्षण क्या हैं, भगवान् की भक्ति का स्वरूपभेद और निषेक (कृतकर्मभोग) का लक्षण बताने की कृपा करें॥४॥ हे वेद के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ ! ब्रह्मा ने स्त्री जाति को तत्त्वज्ञानहीन निर्माण किया है। अतः उसके लिये सारभूत ज्ञान कौन है, हमें बतायें॥५॥ क्योंकि सम्पूर्ण दान, अनशन, तीर्थस्नान, व्रत और तप अज्ञानी को ज्ञान देने की सोलहवीं कला के समान भी नहीं होते हैं॥६॥ हे प्रभो ! पिता से माता का गौरव सौगुना अधिक है, और माता से सौ गुना अधिक पूज्य ज्ञानदाता गुरु का गौरव होता है॥७॥

यम बोले—हे वत्से ! जो तुम्हारे मन में अभीष्ट था वह वरदान पहले ही दिया जा चुका है। अब इस समय मेरे वरदान से तुम्हें भगवान् की भक्ति भी प्राप्त हो जायगी॥८॥ हे कल्याणि ! तुम भगवान् श्रीकृष्ण का गुण-गान सुनना

---

१ क. अथ पूर्वं व०।

श्रोतुमिच्छसि कल्याणि श्रीकृष्णगुणकीर्तनम्। वक्तॄणां प्रश्नकर्तॄणां श्रोतॄणां कुलतारकम् ॥ ९ ॥
शेषो वक्त्रसहस्रेण नहि यद्वक्तुमीश्वरः। मृत्युंजयो न क्षमश्च वक्तुं पञ्चमुखेन च ॥१०॥
धाता चतुर्णां वेदानां विधाता जगतामपि। ब्रह्मा चतुर्मुखेनैव नालं विष्णुश्च सर्ववित् ॥११॥
कार्तिकेयः षण्मुखेन नापि वक्तुमलं ध्रुवम्। न गणेशः समर्थश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥१२॥
सारभूताश्च शास्त्राणां वेदाश्चत्वार एव च। कलामात्रं यद्गुणानां न विदन्ति बुधाश्च ये ॥१३॥
सरस्वती[1] जडीभूता नालं यद्गुणवर्णने। सनत्कुमारो धर्मश्च सनकश्च सनातनः ॥१४॥
सनन्दः कपिलः सूर्यो ये चान्ये ब्रह्मणः सुताः। विचक्षणा न यद्वक्तुं के वाऽन्ये जडबुद्धयः ॥१५॥
न यद्वक्तुं क्षमाः सिद्धा मुनीन्द्रा योगिनस्तथा। के वाऽन्ये च वयं के वा भगवद्गुणवर्णने ॥१६॥
ध्यायन्ति यत्पदाम्भोजं ब्रह्मविष्णुशिवादयः। अतिसाध्यं स्वभक्तानां तदन्येषां सुदुर्लभम् ॥१७॥
कश्चित्कंचिद्विजानाति तद्गुणोत्कीर्तनं महत्। अतिरिक्तं विजानाति ब्रह्मा [2]ब्रह्मविशारदः ॥१८॥
ततोऽतिरिक्तं जानाति गणेशो ज्ञानिनां गुरुः। सर्वातिरिक्तं जानाति सर्वज्ञः शंभुरेव च ॥१९॥
तस्मै दत्तं पुरा ज्ञानं कृष्णेन परमात्मना। अतीव निर्जने रम्ये गोलोके रासमण्डले ॥२०॥

चाहती हो जो कहने वाले, पूछने वाले और सुनने वाले इन सभी के कुलों को तार देता है ॥९॥ जिसे सहस्रमुख वाले शेष भी नहीं कह सकते हैं, मृत्युञ्जय (शिव) अपने पाँचों मुखो से उनके गुण का वर्णन करने में असमर्थ हैं ॥१०॥ चारों वेदों के धारण करने वाले जगत् के विधाता ब्रह्मा एवं समस्त के वेत्ता विष्णु भी असमर्थ हैं ॥११॥ षडानन कार्तिकेय अपने छहों मुखों से उनका वर्णन नहीं कर सकते और योगीन्द्रों के गुरु गणेश भी वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं ॥१२॥ इस भाँति शास्त्रों के सारभूत चारों वेद भी जिनके गुणों का कलामात्र वर्णन नहीं कर सकते हैं तो विद्वानों की कौन-सी बात है ॥१३॥ सरस्वती भी यत्नपूर्वक जिनके गुण का वर्णन करने में अपनी असमर्थता प्रकट करती हैं तथा सनत्कुमार, धर्म, सनक, सनातन, सनन्द, कपिल, सूर्य और ब्रह्मा के अन्य विद्वान् पुत्र भी जिनके गुण कहने में असमर्थ रहते हैं तो जड़-बुद्धि वालों की बात ही क्या है ॥१४-१५॥ उसी प्रकार भगवान् के गुणवर्णन करने में सिद्धगण, मुनीन्द्रगण और योगी लोग असमर्थ रहते हैं तो अन्य तथा हम लोगों की कौन बात है ॥१६॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि जिनके चरण-कमल का सतत ध्यान करते रहते हैं, एवं अपने भक्तों के लिए जो अति साध्य और अन्य के लिए अति दुर्लभ है ॥१७॥ उनके महान् गुणों का कीर्तन कोई कुछ ही जानता होगा। उसके अतिरिक्त ब्रह्मविशारद ब्रह्मा जानते हैं ॥१८॥ उनके अतिरिक्त ज्ञानियों के गुरु गणेश जानते हैं और सबसे अधिक सर्वज्ञ शिव जानते हैं ॥१९॥ क्योंकि पहले समय में परमात्मा श्रीकृष्ण ने अपने सुरम्य रासमण्डल के समय गोलोक के प्रति निर्जन स्थान में उन्हें ज्ञान प्रदान किया था ॥२०॥

---

१. ख. ०ती च यत्ने ना०। २. ख. ०ह्मसुतादयः।

तत्रैव कथितं किंचिद्यद्गुणोत्कीर्तनं पुनः । धर्माय कथयामास शिवलोके शिवः स्वयम् ॥२१॥
धर्मस्तत्कथयामास पुष्करे भास्कराय च । पिता मम यमाराध्य मां प्राप तपसा सति ॥२२॥
पूर्वं[1] स्वविषयं चाहं न गृह्णामि प्रयत्नतः । वैराग्ययुक्तस्तपसे गन्तुमिच्छामि सुव्रते ॥२३॥
तदा मां कथयामास पिता तद्गुणकीर्तनम् । यथागमं तद्वदामि निबोधातीव दुर्गमम् ॥२४॥
तद्गुणं स न जानाति तदन्यस्य च का कथा । यथाऽऽकाशो न जानाति स्वान्तमेव वरानने ॥२५॥
सर्वान्तरात्मा भगवान्सर्वकारणकारणम् । सर्वेश्वरश्च सर्वाद्यः सर्ववित्सर्वरूपधृक् ॥२६॥
नित्यरूपी नित्यदेही नित्यानन्दो निराकृतिः । निरङ्कुशश्च निःशङ्को निर्गुणश्च निराश्रयः ॥२७॥
निर्लिप्तः सर्वसाक्षी च सर्वाधारः परात्परः । प्रकृतिस्तद्विकारा च प्राकृतास्तद्विकारजाः ॥२८॥
स्वयं पुमांश्च प्रकृतिः स्वयं च प्रकृतेः परः । रूपं विधत्तेऽरूपश्च भक्तानुग्रहहेतवे ॥२९॥
अतीव कमनीयं च सुन्दरं सुमनोहरम् । नवीननीरदश्यामं किशोरं गोपवेषकम् ॥३०॥
कन्दर्पकोटिलावण्यलीलाधाम मनोहरम् । शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोषकलोचनम् ॥३१॥
शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभासंशोभिताननम् । अमूल्यरत्नखचितं रत्नाभरणभूषितम् ॥३२॥

उन्होंने उसी स्थान में उनका जो गुण-गान किया था, उसे ही पुनः शिव ने स्वयं अपने लोक में धर्म से कहा ॥२१॥ धर्म ने पुष्कर में सूर्य से कहा। मेरे पिता ने उनकी आराधना करके तप द्वारा मुझको प्राप्त किया ॥२२॥ हे सुव्रते ! पहले समय में प्रयत्न करने पर भी मैं अपने इस विषय (पदाधिकार) का ग्रहण नहीं कर रहा था, विराग होने के नाते तप करने जा रहा था ॥२३॥ उस समय मेरे पिता ने मुझे उनका गुण कीर्तन सुनाया। अतः उस दुरूह विषय को मैं अपने ज्ञानानुसार कह रहा हूँ, सुनो ! ॥२४॥ हे वरानने ! जैसे आकाश अपने ही अन्त को नहीं जानता है उसी तरह वे स्वयं उनके गुणों को नहीं जानते हैं, तो अन्य की बात ही क्या है ॥२५॥ भगवान् श्रीकृष्ण सबके भीतरी आत्मा , समस्त कारणों के कारण, सभी के ईश्वर, सबके आदि, समस्त के वेत्ता, सभी भाँति के रूप धारण करने वाले, नित्यरूपवान्, नित्य देह धारण करने वाले, नित्य आनन्द स्वरूप, आकृतिहीन, निरंकुश (स्वतंत्र), शंकाशून्य, गुणरहित, आश्रमहीन, निर्लिप्त, सभी के साक्षी, समस्त के आधार एवं परात्पर (श्रेष्ठ से श्रेष्ठ) हैं। प्रकृति उनका विकाररूप है और उनके विकार से उत्पन्न होने वाले को प्राकृत कहा जाता है ॥२६-२८॥ वे स्वयं पुरुषरूप और प्रकृतिरूप हैं तथा स्वयं प्रकृति से परे (पृथक्) भी हैं। रूपहीन होते हुए भी भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए रूप धारण करते हैं ॥२९॥ स्वयं अतीव कमनीय (सुन्दरातिसुन्दर), अति मनोहर, नये मेघ की भाँति श्यामल, किशोर, गोपवेष, करोड़ों काम की लावण्यमयी लीला के धाम, मनोहर, शरत् ऋतु के मध्याह्नकालीन कमलों की शोभा को चुराने वाले नेत्रों से युक्त, शारदीय पूर्णिमा के करोड़ों चन्द्रमा की शोभा से सुशोभित मुख वाले, अमूल्य

---

१ क. पूर्वं च विषयांश्चाहं ।

सस्मितं शोभितं शश्वदमूल्यपीतवाससा । परब्रह्मस्वरूपं च ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥३३॥
सुखदृश्यं च शान्तं च राधाकान्तमनन्तकम् । गोपीभिर्वीक्ष्यमाणं च सस्मिताभिः[1] समन्ततः ॥३४॥
रासमण्डलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम् । वंशीं क्वणन्तं द्विभुजं वनमालाविभूषितम् ॥३५॥
कौस्तुभेन मणीन्द्रेण सुन्दरं वक्षसोज्ज्वलम् । कुङ्कुमागरुकस्तूरीचन्दनार्चितविग्रहम् ॥३६॥
चारुचम्पकमालाब्जमालतीमाल्यमण्डितम् । चारुचम्पकशोभाढ्यचूडावक्त्रिमराजितम् ॥३७॥
ध्यायन्ति चैवंभूतं वै भक्ता भक्तिपरिप्लुताः । यद्भयाज्जगतां धाता विधत्ते सृष्टिमेव च ॥३८॥
करोति लेखनं कर्मानुरूपं [2]सर्वकर्मणाम् । तपसां फलदाता च कर्मणां च यदाज्ञया ॥३९॥
विष्णुः पाता च सर्वेषां यद्भयात्पाति संततम् । कालाग्निरुद्रः संहर्ता सर्वविश्वेषु यद्भयात् ॥४०॥
शिवो मृत्युंजयश्चैव ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः । यज्ज्ञानदानात्सिद्धेशो योगीशः सर्ववित्स्वयम् ॥४१॥
परमानन्दयुक्तश्च भक्तिवैराग्यसंयुतः । यत्प्रसादाद्वाति वातः प्रवरः शीघ्रगामिनाम् ॥४२॥
तपनश्च प्रतपति यद्भयात्संततं सति । यदाज्ञया वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु ॥४३॥
यदाज्ञया दहेद्वह्निर्जलमेव सुशीतलम् । दिशो रक्षन्ति दिक्पाला [3]महाभीता यदाज्ञया ॥४४॥

रत्नों से खचित, रत्नों के भूषणों से विभूषित, मन्द मुसुकाते और निरन्तर अमूल्य पीताम्बर से सुशोभित हो रहे हैं। वे परब्रह्मस्वरूप, ब्रह्मतेज से प्रदीप्त, सुखदृश्य (देखने मात्र से सुख देने वाले), शान्त, राधा के कान्त एवं अनन्त हैं। मन्द मुसुकाती हुई गोपियाँ उन्हें चारों ओर से घेरे हुए देख रही हैं ॥३०-३४॥ वे रासमण्डल के मध्य स्थित रत्नसिंहासन पर विराजमान, वंशी की तान में मस्त, दो भुजा वाले, वनमाला पहने, वक्षःस्थल पर स्थित उज्ज्वल कौस्तुभ मणि से सुन्दर तथा सर्वाङ्ग में कुङ्कुम, अगरु, कस्तूरीमिश्रित चन्दन से चर्चित हैं ॥३५-३६॥ सुन्दर चम्पा पुष्पों की माला और कमल एवं मालती पुष्पों की माला से विभूषित, चारु चम्पा की शोभा से सम्पन्न तथा घुँघराले बालों से शोभित हैं ॥३७॥ भक्ति रस में विभोर होकर भक्तगण ऐसे ही स्वरूप का ध्यान करते हैं जिनके भय से जगत् के विधाता ब्रह्मा सृष्टि रचना करते हैं, समस्त देहधारियों के कर्मानुरूप फल उनके माल में लिखते हैं और जिनकी आज्ञा से तप का फल और कर्मों के फल (जीवों को) देते रहते हैं ॥३८-३९॥ जिनके भय से विष्णु सभी के निरन्तर रक्षक हुए हैं एवं जिनके भय से कालाग्नि रुद्र समस्त विश्व का संहार करते हैं ॥४०॥ जिनके ज्ञानदान द्वारा ज्ञानियों के गुरु के गुरु एवं मृत्युञ्जय शिव सिद्धेश, योगीश और स्वयं सर्ववेत्ता, परमानन्दसम्पन्न एवं भक्तिवैराग्ययुक्त हो गये हैं। जिनके प्रसाद से वायु शीघ्रगामियों में सर्वश्रेष्ठ होकर चलता है ॥४१-४२॥ जिनके भय से तपन (सूर्य) निरन्तर तपते हैं, जिनकी आज्ञा से इन्द्र वर्षा करते हैं तथा सभी जीवों के बीच मृत्यु विचरण करता है ॥४३॥ जिनकी आज्ञा से अग्नि जलाता है, जल अति शीतल होता है। जिनकी आज्ञावश अत्यन्त भयभीत होकर दिक्पाल दिशाओं की रक्षा करते हैं ॥४४॥ जिनके भय से राशिमण्डल तथा ग्रहगण

१क. ०भिश्च शाश्वतम्० । २ख. ०र्वदेहिनाम् । ३क. मही पाति य० ।

भ्रमन्ति राशिचक्राणि ग्रहा वै यद्भयेन च । भयात्फलन्ति वृक्षाश्च पुष्पन्त्यपि च यद्भयात् ॥४५॥
भयात्फलानि पक्वानि निष्फलास्तरवो भयात् । यदाज्ञया स्थलस्थाश्च न जीवन्ति जलेषु च ॥४६॥
तथा स्थले जलस्थाश्च न जीवन्ति यदाज्ञया । अहं नियमकर्ता च धर्माधर्मे च यद्भयात् ॥४७॥
कालश्च कलयेत्सर्वं भ्रमत्येव यदाज्ञया । अकाले न हरेत्कालो मृत्युर्वै यद्भयेन च ॥४८॥
ज्वलदग्नौ पतन्तं च गभीरे च जलार्णवे । वृक्षाग्रात्तीक्ष्णखड्गे च सर्पादीनां मुखेषु च ॥४९॥
नानाशस्त्रास्त्रविद्धं च रणेषु विषमेषु च । पुष्पचन्दनतल्पे च बन्धुवर्गैश्च रक्षितम् ॥५०॥
शयानं तन्त्रमन्त्रैश्च काले कालो हरेद्भयात् । धत्ते वायुस्तोयराशिं तोयं कूर्मं यदाज्ञया ॥५१॥
कूर्मोऽनन्तं स च क्षोणीं समुद्रान्सप्त पर्वतान् । [1]सर्वांश्चैव क्षमारूपो नानारूपं बिभर्ति सः ॥५२॥
यतः सर्वाणि भूतानि लीयन्तेऽन्ते च तत्र वै । इन्द्रायुश्चैव दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः ॥५३॥
अष्टाविंशच्चक्रपाते ब्रह्मणः स्यादहर्निशम् । षष्ट्यधिके पञ्चशते सहस्रे पञ्चविंशतौ ॥५४॥
युगे नराणां शक्रायुरेवं संख्याविदो विदुः । एवं त्रिंशद्दिनैर्मासो द्वाभ्यां ताभ्यामृतुः स्मृतः ॥५५॥
ऋतुभिः षड्भिरेवाब्दं शताब्दं ब्रह्मणो वयः । ब्रह्मणश्च निपाते वै चक्षुरुन्मीलनं हरेः ॥५६॥

घूमा करते हैं, जिनके भय से वृक्ष फूलते-फलते हैं ॥४५॥ जिनके भय से फल पक जाते हैं और (समय पर) वृक्ष फलहीन हो जाते हैं। जिनकी आज्ञा से स्थल के रहने वाले (जीव) जल में जीवित नहीं रह सकते ॥४६॥ जिनकी आज्ञा से जलस्थायी जीव स्थल पर जीवित नहीं रहते हैं। जिनके भय से मैं धर्माधर्म का नियम करता हूँ ॥४७॥ जिनकी आज्ञा से काल सभी को ग्रास बनाता हुआ घूमा करता है। जिनके भय से कालरूप मृत्यु अकाल में हरण नहीं कर पाता है ॥४८॥ जलते हुए अग्नि में, अगाध जलसागर में, वृक्ष के अग्रभाग से, तीक्ष्ण खड्ग पर, सर्पादि हिंसक जन्तुओं के मुख में तथा भीषण रणस्थलों में अनेक भाँति के शस्त्रास्त्रों से छिन्न-भिन्न होकर गिरते हुए को तथा पुष्प-चन्दन की शय्या पर बन्धुवर्गों द्वारा सुरक्षित को और तन्त्रों-मन्त्रों द्वारा शयन करते हुए को भी काल जिनके भय से समय पर अपहरण कर लेता है। जिनकी आज्ञा से वायु जलराशि धारण करता है, तोय कूर्म (कछुवा) को धारण करता है। कछुवा अनन्त (शेष) को धारण करता है। अनन्त पृथिवी को धारण करता है और पृथिवी सभी समुद्रों, सातों पर्वतों एवं सभी को तथा अनेक रूपों को धारण करती है ॥४९-५२॥ और अन्त में जिनमें सभी भूत (पृथिवी आदि) लीन हो जाते हैं। एकहत्तर दिव्य युगों की इन्द्र की आयु होती है। इस भाँति अट्ठाईस इन्द्र के समय तक ब्रह्मा का एक अहोरात्र (दिन-रात) होता है। मनुष्यों के पचीस सहस्र पाँच सौ साठ युग के समय तक इन्द्र की आयु होती है, ऐसा गणनाविदों ने कहा है। इस प्रकार तीस दिन का एक मास, दो मास की एक ऋतु, छह ऋतुओं का एक वर्ष और सौ वर्ष की ब्रह्मा की आयु होती है। एवं ब्रह्मा की आयु का समय भग-

---

१क. ०र्वांश्च रक्षमाणो यो ना० ।

चक्षुर्निमीलने तस्य लयं प्राकृतिकं विदुः । प्रलये प्राकृताः सर्वे देवाद्याश्च चराचराः ॥५७॥
लीना धातरि धाता च श्रीकृष्णे नाभिपङ्कजे । विष्णुः क्षीरोदशायी च वैकुण्ठे यश्चतुर्भुजः ॥५८॥
विलीना वामपार्श्वे च कृष्णस्य परमात्मनः । इन्द्राद्या[1] भैरवाद्याश्च यावन्तश्च शिवानुगाः ॥५९॥
शिवाधारे शिवे लीना ज्ञानानन्दे सनातने । ज्ञानाधिदेवः कृष्णस्य महादेवस्य चाऽत्मनः ॥६०॥
तस्य ज्ञाने विलीनश्च बभूवाथ क्षणं हरेः । दुर्गायां विष्णुमायायां विलीनाः सर्वशक्तयः ॥६१॥
सा च कृष्णस्य बुद्धौ च बुद्धयधिष्ठातृदेवता । नारायणांशः स्कन्दश्च लीनो वक्षसि तस्य च ॥६२॥
श्रीकृष्णांशश्च तद्बाहौ देवाधीशो गणेश्वरः । पद्मांशभूता पद्मायां सा राधायां च सुव्रते ॥६३॥
गोप्यश्चापि च तस्यां च सर्वा वै देवयोषितः । कृष्णप्राणाधिदेवी सा तस्य प्राणेषु सा स्थिता ॥६४॥
सावित्री च सरस्वत्यां वेदशास्त्राणि यानि च । स्थिता वाणी च जिह्वायां तस्यैव परमात्मनः ॥६५॥
गोलोकस्थस्य गोपाश्च विलीनास्तस्य लोमसु । तत्प्राणेषु च सर्वेषां प्राणा वाता हुताशनः ॥६६॥
जठराग्नौ विलीनश्च जलं तद्रसनाग्रतः । वैष्णवाश्चरणाम्भोजे परमानन्दसंयुताः ॥६७॥

वान् विष्णु का एक निमेष (पलक-माँजना) होता है। इस प्रकार उनका नेत्र निमीलन करना ही प्राकृतिक लय है, ऐसा विद्वानों ने कहा है। प्रलय के समय देव आदि चराचर प्राकृत सभी धाता ब्रह्मा में लीन होते हैं और ब्रह्मा भगवान् श्रीकृष्ण के नाभिकमल में लीन होते हैं। भगवान् विष्णु जो क्षीरसागर में शयन करते हैं, और वैकुण्ठ में चार भुजाओं से विभूषित रहते हैं वे परमात्मा श्रीकृष्ण के बायें पार्श्व में विलीन होते हैं। जितने रुद्रादि और भैरवादि गण भगवान् शिव के अनुगामी हैं, वे शिवाधार शिव में लीन होते हैं, जो ज्ञानानन्द एवं सनातन हैं। श्रीकृष्ण तथा महादेव के आत्मा का जो ज्ञानाधिदेव है, उसका हरि के ज्ञान में तत्क्षण लय हो जाता है। विष्णुमाया दुर्गाजी में समस्त शक्तियाँ विलीन हो जाती हैं। वह दुर्गा भगवान् श्रीकृष्ण की बुद्धि में निवास करती हैं, जो उनकी बुद्धि की अधिष्ठातृदेवी हैं। उसी प्रकार नारायण के अंश स्कन्द नारायण के वक्षःस्थल में लीन हो जाते हैं ॥५३-६२॥ देवों के अधीश्वर गणेशजी, भगवान् श्रीकृष्ण के बाहु में लीन होते हैं। हे सुव्रते! पद्मा (कमला) का अंश कमला में और कमला राधिका जी में लीन होती हैं और गोपियाँ एवं सभी देवियाँ उन्हीं राधा में लीन हो जाती हैं, जो भगवान् श्रीकृष्ण की प्राणाधिष्ठातृदेवी हैं। इसीलिए वह राधा उनके प्राणों में स्थित रहती हैं ॥६३-६४॥ सावित्री एवं वेदशास्त्र आदि सभी सरस्वती में स्थित होते हैं और सरस्वती परमात्मा उसी श्रीकृष्ण की जिह्वा में लीन होती हैं ॥६५॥ गोलोकनिवासी भगवान् के लोमों में वहाँ के सभी गोप और उनके प्राणों में सभी के प्राण-वायु विलीन होते हैं। उनके जठराग्नि में अग्नि, रसना के अग्रभाग में जल और उनके चरणकमल में परमतत्त्वस्वरूप भक्तिरसामृत पान करने वाले वैष्णवगण परमानन्दमग्न होकर

---

१. ख. रुद्रा०।

सारात्सारतरा भक्तिरसपीयूषपायिनः । विराट्क्षुद्रश्च महति लीनः कृष्णे महान्विराट् ॥६८॥
यस्यैव लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च । यस्य चक्षुर्निमेषेण महांश्च प्रलयो भवेत् ॥६९॥
चक्षुरुन्मीलने सृष्टिर्यस्यैव परमात्मनः । यावन्निमेषे सृष्टिः स्यात्तावदुन्मीलने व्ययः ॥७०॥
ब्रह्मणश्च शताब्देन सृष्टिस्तत्र लयः पुनः । ब्रह्मसृष्टिलयानां च संख्या नास्त्येव सुव्रते ॥७१॥
यथा भूरजसां चैव संख्यानं च निशामय । चक्षुर्निमेषे प्रलयो यस्य सर्वान्तरात्मनः ॥७२॥
उन्मीलने पुनः सृष्टिर्भवेद्देवेश्वरेच्छया । तद्गुणोत्कीर्तनं वक्तुं ब्रह्माण्डेषु च कः क्षमः ॥७३॥
यथा श्रुतं तातवक्त्रात्तथोक्तं च यथागमम् । मुक्तयश्च चतुर्वेदेनिरुक्ताश्च चतुर्विधाः ॥७४॥
तत्प्रधाना हरेर्भक्तिर्मुक्तेरपि गरीयसी । सालोक्यदा हरेरेका चान्या सारूप्यदाऽपरा ॥७५॥
सामीप्यदा च निर्वाणदात्री चैवमिति स्मृतिः । भक्तास्ता नहि वाञ्छन्ति विना तत्सेवनादिकम् ॥७६॥
सिद्धत्वममरत्वं च ब्रह्मत्वं चावहेलया । जन्ममृत्युजराव्याधिभयशोकादिखण्डनम् ॥७७॥
धारणं दिव्यरूपस्य विदुर्निर्वाणमोक्षदम् । मुक्तिश्च सेवारहिता भक्तिः सेवाविवर्द्धिनी ॥७८॥

निवास करते हैं ॥६६-६७॥ फिर शुद्ध विराट् महान् में तथा महाविराट् भगवान् श्रीकृष्ण में लीन होता है ॥६८॥ जिनके लोमकूपों में समस्त विश्व स्थित रहता है और जिनके नेत्र (पलक) बंद करने से महाप्रलय तथा जिन परमात्मा के नेत्रोन्मीलन (आँख खोलने) से सृष्टि होती है। इस भाँति उनके निमेष (नेत्रनिमीलन) के समय जितनी सृष्टि 'सुरक्षित' रहती है, नेत्रोन्मीलन के समय सबकी सब बाहर (सृष्टि) हो जाती है ॥६९-७०॥ ब्रह्मा के सौ वर्ष की आयु तक सृष्टि होती है। उपरान्त पुनः वह उसी में लीन हो जाती है। इसलिए हे सुव्रते! ब्रह्मा, सृष्टि और लय की पृथिवी के रजकणों की भाँति (अनन्त होने के कारण) संख्या नहीं है ॥७१॥ क्योंकि जिस सर्वान्तरात्मा भगवान् के नेत्रोन्मेष (पलक भाँजने) के समय तक प्रलय और उसी देवेश्वर की इच्छा से उसके नेत्रोन्मीलन करने (आँख खोलने) पर सृष्टि होती है, उसके गुण का ज्ञान करने में समस्त ब्रह्माण्डों के मध्य कौन समर्थ हो सकता है? ॥७२-७३॥ इस प्रकार पिताजी के मुख से मैंने जैसा सुना था वैसा शास्त्रानुसार सुना दिया। चारों वेदों में मुक्ति चार प्रकार की बतायी गयी है। उनमें भगवान् की भक्ति, मुक्ति से अधिक गौरव रखने के कारण सर्वश्रेष्ठ है। उन चार प्रकार की मुक्ति में एक मुक्ति भगवान् का सालोक्य प्रदान करती है, दूसरी मुक्ति सारूप्य, तीसरी सामीप्य और चौथी मुक्ति सायुज्य प्रदान करती है तथा निर्वाणदायिनी मुक्ति भी कही गयी है। किन्तु भक्त गण बिना भगवान् की सेवा (भक्ति) किये उपर्युक्त कोई मुक्ति नहीं चाहते हैं ॥७४-७६॥ इतना ही नहीं, भक्त लोग भक्तिरहित अमरत्व एवं ब्रह्मत्व की भी अवहेलना कर देते हैं। इस प्रकार भक्ति जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, भय और शोक आदि के नाशपूर्वक दिव्यरूप धारण एवं निर्वाण मोक्ष प्रदान करती है। मुक्ति सेवा से रहित होती है और भक्ति सेवावृद्धि करती है ॥७७-७८॥ भक्ति और मुक्ति में यही

भक्तिमुक्त्योरयं भेदो निषेकलक्षणं शृणु । विदुर्बुधा निषेकं च भोगं च कृतकर्मणाम् ॥७९॥
तत्खण्डनं च शुभदं परं श्रीकृष्णसेवनम् । तत्त्वज्ञानमिदं साध्वि सारं वै लोकवेदयोः ॥८०॥
विघ्नघ्नं शुभदं चोक्तं गच्छ वत्से यथासुखम् । इत्युक्त्वा सूर्यपुत्रश्च जीवयित्वा च तत्पतिम् ॥८१॥
तस्यै शुभाशिषं दत्त्वा गमनं कर्तुमुद्यतः । दृष्ट्वा यमं च गच्छन्तं सावित्री तं प्रणम्य च ॥८२॥
रुरोद चरणे धृत्वा सद्विच्छेदोऽतिदुःखदः । सावित्रीरोदनं श्रुत्वा यमः सोऽयं कृपानिधिः ॥८३॥
तामित्युवाच संतुष्टस्त्वरोदीच्चापि नारद ॥८४॥

यम उवाच

लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते । अन्ते यास्यसि गोलोके श्रीकृष्णभवनं शुभे ॥८५॥
गत्वा च स्वगृहं भद्रे सावित्र्याश्च व्रतं कुरु । द्विसप्तवर्षपर्यन्तं नारीणां मोक्षकारणम् ॥८६॥
ज्येष्ठे शुक्लचतुर्दश्यां सावित्र्याश्च व्रतं कुरु । शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे महालक्ष्म्या व्रतं तथा ॥८७॥
द्व्यष्टवर्षव्रतं चेदं प्रत्यब्दं पक्षमेव च । करोति परया भक्त्या सा याति च हरेः पदम् ॥८८॥
प्रतिमङ्गलवारे च देवीं मङ्गलचण्डिकाम् । प्रतिमासं शुक्लषष्ठ्यां षष्ठीं मङ्गलदायिकाम् ॥८९॥

भेद है। अब निषेक का लक्षण कह रहा हूँ, सुनो! विद्वानों ने किये हुए कर्मों के भोग को निषेक बताया है ॥७९॥ हे साध्वि! भगवान् श्रीकृष्ण की एकमात्र सेवा द्वारा ही (कर्मों) का खण्डन होता है क्योंकि वह परम शुभ (कल्याण-प्रद) होती है। यही तत्त्वज्ञान है और लोक एवं वेद का सार है ॥८०॥ तथा विघ्नों का नाशक और शुभदायक है। हे वत्से! इस प्रकार मैंने सब कुछ बता दिया है, अतः तू अब सुखपूर्वक घर चली जा। इतना कह कर सूर्यपुत्र यम ने उसके पति (सत्यवान्) को जीवित कर दिया और सावित्री को शुभाशीर्वाद देकर अपने चलने का उपक्रम किया। उपरान्त सावित्री ने यम को जाते हुए देखकर उन्हें प्रणाम किया और उनके चरण पकड़ कर रुदन करने लगी क्योंकि सत्पुरुषों का वियोग अति दुःखदायक होता है। हे नारद! उस समय सावित्री का रुदन देखकर कृपानिधान यमराज भी अति सन्तुष्ट होकर उसे आश्वासन देने लगे जिसमें प्रेममग्न होकर वे स्वयं भी अश्रुपात कर रहे थे ॥८१-८४॥

यम बोले—हे शुभे! पुण्य क्षेत्र भारत में एक लाख वर्ष तक सुखोपभोग करके अन्त में तुम गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण के भवन में चली जाओगी ॥८५॥ अतः हे भद्रे! घर जाकर चौदह वर्ष तक तुम (वट) सावित्री का व्रत करो, जो स्त्रियों के मोक्ष का हेतु है ॥८६॥ ज्येष्ठ मास की शुक्ल चतुर्दशी के दिन सावित्री का वह शुभ व्रत होता है। भादों मास की शुक्लाष्टमी के दिन महालक्ष्मी का शुभ व्रत होता है, जिसे १६ वर्षों तक प्रत्येक वर्ष जो (स्त्री) परम भक्ति के साथ करती है वह विष्णुलोक को जाती है ॥८७-८८॥ इसी भाँति प्रत्येक मंगल के दिन मंगलचण्डिका देवी की, प्रति मास में शुक्ल पक्ष की षष्ठी के दिन मंगलदायिनी षष्ठी देवी की, आषाढ़ की संक्रान्ति के दिन समस्त सिद्धि-

---

१. क अष्ट°।

तथा चाऽऽषाढसंक्रान्त्यां मनसा सर्वसिद्धिदाम्। राधां रासे च कार्तिक्यां कृष्णप्राणाधिकां प्रियाम् ॥९०॥
उपोष्य शुक्लाष्टम्यां च प्रतिमासे वरप्रदाम्। विष्णुमायां भगवतीं दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥९१॥
प्रकृतिं जगदम्बां च पतिपुत्रवतीषु च। पतिव्रतासु शुद्धासु यन्त्रेषु प्रतिमासु च ॥९२॥
या नारी पूजयेद्भक्त्या धनसंतानहेतवे। इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ॥९३॥
इत्युक्त्वा तां धर्मराजो जगाम निजमन्दिरम्। गृहीत्वा स्वामिनं सा च सावित्री च निजालयम् ॥९४॥
सावित्री सत्यवन्तं च वृत्तान्तं च यथाक्रमम्। अन्यांश्च कथयामास बान्धवांश्चैव नारद ॥९५॥
सावित्रीजनकः पुत्रान्स प्रापद्वै क्रमेण च। श्वशुरश्चक्षुषी राज्यं सा च पुत्रान्वरेण च ॥९६॥
लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते। जगाम स्वामिना सार्धं गोलोकं सा पतिव्रता ॥९७॥
सवितुश्चाधिदेवी या मन्त्राधिष्ठातृदेवता। सावित्री चापि वेदानां सावित्री तेन कीर्तिता ॥९८॥
इत्येवं कथितं वत्स सावित्र्याख्यानमुत्तमम्। जीवकर्मविपाकं च किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥९९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्यु० सावित्र्या यमोपदेशसमाप्तिर्नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

दायिनी मनसा देवी की, कार्तिकी संक्रान्ति एवं पूर्णिमा को कृष्ण की प्राणों से भी अधिक प्रिय राधा की और प्रत्येक मास की शुक्लाष्टमी में उपवास रह कर भगवान् विष्णु की माया भगवती दुर्गा जी की, जो वर प्रदान करने वाली, दुर्गति की नाशिनी, प्रकृति स्वरूप जगज्जननी एवं पति पुत्र सम्पन्न, शुद्ध पतिव्रताओं में प्रथम सती हैं, यंत्रों और परमात्माओं में जो स्त्री धन और सन्तानार्थ भक्तिपूर्वक अर्चना करती है, वह इस लोक में (आजीवन) सुखोपभोग करने के उपरान्त अन्त में श्री हरि के लोक में जाती है ॥८९–९३॥ इतना कह कर धर्मराज अपने भवन में चले गये और सावित्री भी अपने पति (सत्यवान्) को साथ लेकर अपने घर आयी ॥९४॥ हे नारद! घर पहुँच कर सावित्री ने यह समस्त वृत्तान्त क्रमशः अपने (पति) सत्यवान् और अन्य बन्धुओं को कह सुनाया ॥९५॥ पश्चात् क्रमशः सावित्री के पिता को पुत्रों का लाभ हुआ, उसके सास-ससुर को आँखें और स्वयं उसे राज्य समेत पुत्रों की प्राप्ति हुई। इस प्रकार वह पतिव्रता वरदान द्वारा इस पुण्य क्षेत्र भारतवर्ष में एक लाख वर्ष तक सुखोपभोग करने के अनन्तर अपने स्वामी समेत गोलोक को चली गयी ॥९६-९७॥ सविता (सूर्य) की अधिदेवी, मन्त्रों की अधिष्ठात्री देवी और वेदों की सावित्री देवी होने के नाते उसे सावित्री कहा जाता है ॥९८॥ हे वत्स! इस भाँति सावित्री का उत्तम आख्यान तथा जीवों का कर्मविपाक तुम्हें सुना दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥९९॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारदनारायणसंवादविषयक सावित्री के उपाख्यान में सावित्री को यम के द्वारा दिये गये उपदेश की समाप्ति नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

श्रीकृष्णस्याऽऽत्मनश्चैव निर्गुणस्य निराकृतेः । सावित्रीयमसंवादे श्रुतं सुविमलं यशः ॥१॥
तद्गुणोत्कीर्तनं सत्यं मङ्गलानां च मङ्गलम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि लक्ष्म्युपाख्यानमीश्वर[1] ॥२॥
केनाऽऽदौ पूजिता साऽपि किंभूता केन[2] वा पुरा । तद्गुणोत्कीर्तनं सत्यं वद वेदविदां वर ॥३॥

नारद उवाच

सृष्टेरादौ पुरा ब्रह्मन्कृष्णस्य परमात्मनः । देवी वामांशसंभूता चाऽऽसीत्सा रासमण्डले ॥४॥
अतीव सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला । यथा द्वादशवर्षीया रम्या सुस्थिरयौवना ॥५॥
श्वेतचम्पकवर्णाभा सुखदृश्या मनोहरा । शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभासंशोभिताननना ॥६॥
शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभाशोभितलोचना । सा च देवी द्विधाभूता सहसैवेश्वरेच्छया ॥७॥
समा रूपेण वर्णेन तेजसा वयसा त्विषा । यशसा वाससा मूर्त्या भूषणेन गुणेन च ॥८॥

अध्याय ३५

लक्ष्मी के स्वरूप तथा पूजा आदि का वर्णन

नारद बोले—सावित्री और यम के संवाद में निर्गुण निराकार परमात्मरूप श्रीकृष्ण का अति निर्मल यश मैंने सुना ॥१॥ क्योंकि उनका गुणगान ही सत्यरूप और मंगलों का मंगल रूप है। हे ईश्वर! मैं अब लक्ष्मी का उपाख्यान सुनना चाहता हूँ ॥२॥ हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! सर्वप्रथम उनकी पूजा किसने की थी और पूर्वकाल में किसके द्वारा वे किस रूप में अवतरित हुई थीं? उनके गुणों का गान करना ही सत्य है। अतः उसे कहने की कृपा करें ॥३॥

नारायण बोले—हे ब्रह्मन्! पूर्व समय—सृष्टि के आदि काल में परमात्मा श्रीकृष्ण के रासमण्डल में वह देवी उनके बाँयें अंग से प्रकट हुई ॥४॥ जो अत्यन्त सुन्दरी, श्यामा (ऋतु के अनुरूप सुख देने वाली), न्यग्रोधपरिमण्डला (कठोर स्तन, स्थूल नितम्ब तथा पतली कमर वाली), बारह वर्ष वाली, रमणीय, श्वेत चम्पा के समान वर्ण कान्तिवाली, सुदर्शना, मनोहरा, शरत्पूर्णिमा के करोड़ों चन्द्रमा की प्रभा से सुशोभित मुखवाली और शरत्काल के मध्याह्नकालिक कमलों की शोभा से शोभित नेत्रों वाली थी। ईश्वर की इच्छा से वह देवी उसी समय सहसा दो रूपों में हो गयी जो रूप-रंग,

---

१ क. °नमुत्तमम्। २ क. संस्तुता।

स्मितेन वीक्षणेनैव वचसा गमनेन च । मधुरेण स्वरेणैव [1]नयेनानुनयेन च ॥९॥
तद्वामांशा महालक्ष्मीर्दक्षिणांशा च राधिका। राधाऽऽदौ वरयामास द्विभुजं च परात्परम् ॥१०॥
महालक्ष्मीश्च तत्पश्चाच्चकमे कमनीयकम् । कृष्णस्तद्गौरवेणैव द्विधारूपो बभूव ह ॥११॥
दक्षिणांशो वै द्विभुजो वामांशश्च चतुर्भुजः। चतुर्भुजाय द्विभुजो महालक्ष्मीं ददौ [2]पुरा ॥१२॥
लक्ष्यते दृश्यते विश्वं स्निग्धदृष्ट्या ययाऽनिशम्। देवीषु या च महती महालक्ष्मीश्च सा स्मृता ॥१३॥
द्विभुजो राधिकाकान्तो लक्ष्मीकान्तश्चतुर्भुजः । गोलोके द्विभुजस्तस्थौ गोपैर्गोपीभिरावृतः ॥१४॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठं प्रययौ पद्मया सह। सर्वांशेन समौ तौ द्वौ कृष्णनारायणौ परौ ॥१५॥
महालक्ष्मीश्च योगेन नानारूपा बभूव सा। वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः परिपूर्णतमाऽपरा ॥१६॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सर्वसौभाग्यसंयुता। प्रेम्णा सा वै प्रधाना च सर्वासु रमणीषु च ॥१७॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च शक्रसंपत्स्वरूपिणी। पातालेषु च मर्त्येषु राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥१८॥
गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वेव गृहिणी च कलांशया। संपत्स्वरूपा गृहिणां सर्वमङ्गलमङ्गला ॥१९॥

तेज, अवस्था, कान्ति, यश, वस्त्र, आकार-प्रकार, भूषण, गुण, मन्द मुसुकान, आँखों से देखने, बोलने एवं चलने आदि में तथा स्वर की मधुरता और नय-अनुनय (व्यवहार कुशलता) में समान थीं ॥५-९॥ उनके बाँये अंश से प्रकट होने वाली महालक्ष्मी और दाहिने अंश से उत्पन्न होने वाली राधिका थीं। उनमें श्री राधिका जी ने सर्वप्रथम दो भुजा वाले एवं परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण का वरण कर लिया ॥१०॥ पश्चात् महालक्ष्मी ने भी अति सुन्दर पति का वरण किया। उन दोनों के गौरव के कारण ही भगवान् श्रीकृष्ण दो रूपों में प्रकट हुए ॥११॥ जिनमें दाहिने भाग वाला रूप दो भुजाओं और बाँयें भाग वाला चार भुजाओं से विभूषित था। दो भुजा वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने महालक्ष्मी को पहले ही उस चार भुजा वाले (महाविष्णु) को सौंप दिया था ॥१२॥ जो महालक्ष्मी इस समस्त विश्व को अपनी अति स्नेहमयी दृष्टि से सतत देखती हैं तथा देवियों में महान् हैं। इसीलिए उन्हें महालक्ष्मी कहा जाता है ॥१३॥ इस प्रकार दो भुजा वाले भगवान् श्रीकृष्ण श्री राधिका जी के पति हैं और चार भुजा वाले (महाविष्णु) महालक्ष्मी जी के। दो भुजा वाले भगवान् श्रीकृष्ण गोपों और गोपियों से आवृत होकर गोलोक में ही रहते हैं। अनन्तर चार भुजा वाले भगवान् (विष्णु) ने पद्मा (महालक्ष्मी) को साथ लेकर वैकुण्ठ को प्रस्थान किया। इस भाँति वे परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण और नारायण विष्णु, दोनों सभी अंशों में समान हैं ॥१४-१५॥ उस महालक्ष्मी ने योग द्वारा अपने अनेक रूप धारण किये हैं, जो वैकुण्ठ में परिपूर्णतम और श्रेष्ठ होकर विराजमान हैं ॥१६॥ तथा शुद्ध सत्त्व स्वरूप, समस्त सौभाग्य से परिपूर्ण और समस्त रमणियों में वे प्रेमप्रधान रमणी हैं ॥१७॥ इसी भाँति ये स्वर्ग की स्वर्गलक्ष्मी, इन्द्र की सम्पत्तिस्वरूप और पाताल तथा मर्त्यलोक के राजाओं की राजलक्ष्मी हैं ॥१८॥एवं घर की गृहलक्ष्मी, अंशकला से घर की गृहिणी, गृही मनुष्यों की सम्पत्ति रूप और समस्त मंगलों की मंगलरूपा हैं ॥१९॥ वही गौओं की

---

१ क. प्रेम्णा चानु। २ क. °दौ मुदा।

गवांप्रसूः सा सुरभिर्दक्षिणा यज्ञकामिनी। क्षीरोदसिन्धुकन्या सा श्रीरूपा पद्मिनीषु च ॥२०॥
शोभारूपा च चन्द्रे सा सूर्यमण्डलमण्डिता। विभूषणेषु रत्नेषु फलेषु[1] जलजेषु च ॥२१॥
नृपेषु नृपपत्नीषु दिव्यस्त्रीषु गृहेषु च। सर्वसस्येषु वस्त्रेषु स्थाने सा संस्कृते तथा ॥२२॥
प्रतिमासु च देवानां मङ्गलेषु घटेषु च। माणिक्येषु च मुक्तासु माल्येषु च मनोहरा ॥२३॥
मणीन्द्रेषु च हारेषु क्षीरे वै चन्दनेषु च। वृक्षशाखासु रम्यासु नवमेघेषु वस्तुषु ॥२४॥
वैकुण्ठे पूजिता साऽऽदौ देवी नारायणेन च। द्वितीये ब्रह्मणा भक्त्या तृतीये शंकरेण च ॥२५॥
विष्णुना पूजिता सा च क्षीरोदे भारते मुने। स्वायंभुवेन मनुना मानवेन्द्रैश्च सर्वतः ॥२६॥
ऋषीन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सद्भिश्च गृहिभिर्भवे। गन्धर्वाद्यैश्च नागाद्यैः पातालेषु च पूजिता ॥२७॥
शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे पूजा वै ब्रह्मणा कृता। भक्त्या च पक्षपर्यन्तं त्रिषु लोकेषु नारद ॥२८॥
चैत्रे पौषे च भाद्रे च पुण्ये मङ्गलवासरे। विष्णुना निर्मिता पूजा त्रिषु लोकेषु भक्तितः ॥२९॥
वर्षान्ते पौषसंक्रान्त्यां मेघ्यामावाह्य चाङ्गणे। मनुस्तां पूजयामास सा भूता भुवनत्रये ॥३०॥
राज्ञा संपूजिता सा वै मङ्गलेनैव मङ्गला। केदारेणैव नीलेन नलेन सुबलेन च ॥३१॥

जननी सुरभी, यज्ञ की प्रिया दक्षिणा, क्षीरसागर की कन्या कमला तथा कमलिनियों में श्री (शोभा) रूपा हैं।.२०॥ वे चन्द्रमा में शोभा रूप हैं तथा सूर्य मण्डल से विभूषित हैं। उसी भाँति आभूषणों, रत्नों, फलों, जलोत्पन्न वस्तुओं, राजाओं, रानियों, दिव्य स्त्रियों, घरों, समस्त फसलों, वस्त्रों, सुसंस्कृत स्थानों, देवों की प्रतिमाओं, मांगलिक कलशों, मणि-वस्तुओं मोतियों और मालाओं में मनोहर रूप हैं। तथा उत्तम मणियों, हारों, दुग्ध, चन्दनों, वृक्षों की रम्य शाखाओं, नवीन मेघों और वस्तुओं में भी सुन्दर रूप हैं॥२१-२४॥ इस प्रकार सर्व-प्रथम वैकुण्ठ में नारायण ने इस देवी की अर्चना की पश्चात् भक्तिपूर्वक ब्रह्मा और शंकर ने॥२५॥ हे मुने! तदनन्तर क्षीरसागर में विष्णु ने, भारत में स्वायम्भुव मनु ने और सभी राजाओं ने सविधि पूजा की॥२६॥ उसके उपरान्त श्रेष्ठ ऋषिगणों, मुनिगणों, सज्जन गृहस्थों ने अर्चना की। गन्धर्वों आदि और सर्पों आदि ने भी पातालों में इन्हें पूजित किया॥२७॥ हे नारद! भादों मास की शुक्ल अष्टमी के दिन ब्रह्मा ने भक्तिपूर्वक पूजा की और तीनों लोकों में पक्ष पर्यन्त उनकी पूजा हुई॥२८॥ भगवान् विष्णु ने तीनों लोकों में भक्तिपूर्वक इनकी पूजा करने के लिए चैत्र, पौष और भादों मास एवं पुण्य मंगल दिन बताया है॥२९॥ मनु ने वर्षा के अन्तिम समय और पौष की संक्रान्ति के दिन मेंह तथा गृह प्राङ्गण में लक्ष्मी की आवाहनपूर्वक पूजा की और उसी दिन से लक्ष्मी तीनों लोकों में प्रकट हो गयीं॥३०॥ अनन्तर राजा मंगल ने उस मंगलस्वरूपा महालक्ष्मी की पूजा की तथा केदार, नील, नल, सुबल, उत्तानपाद-पुत्र ध्रुव, इन्द्र, बलि, कश्यप, दक्ष,

---

१. क. °षु च जलेषु च।

ध्रुवेणौत्तानपादेन शक्रेण बलिना तथा । कश्यपेन च दक्षेण[1] मनुना च विवस्वता ॥३२॥
प्रियव्रतेन चन्द्रेण कुबेरेणैव वायुना । यमेन वह्निना चैव वरुणेनैव पूजिता ॥३३॥
एवं सर्वत्र सर्वैश्च वन्दिता पूजिता सदा । सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० लक्ष्म्युपा० लक्ष्मीस्वरूपपूजादिवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

नारायणप्रिया सा च वरा वैकुण्ठवासिनी । वैकुण्ठाधिष्ठातृदेवी महालक्ष्मीः सनातनी ॥१॥
कथं बभूव सा देवी पृथिव्यां सिन्धुकन्यका । किं तद्ध्यानं च[2] कवचं सर्वं पूजाविधिक्रमम् ॥२॥
पुरा केन स्तुताऽऽदौ सा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥३॥

नारायण उवाच

पुरा दुर्वाससः शापाद्भ्रष्टश्रीकः पुरंदरः । बभूव देवसंघश्च मर्त्यलोकश्च नारद ॥४॥

मनु, विवस्वान् (सूर्य), प्रियव्रत, चन्द्र, कुबेर, वायु, यम, अग्नि और वरुण ने उनकी अर्चना की ॥ ३१-३३ ॥ इस प्रकार सभी स्थानों में सभी लोगों द्वारा वे वन्दित और पूजित हुई जो समस्त ऐश्वर्यों की अधिदेवी और निखिल सम्पत्तियों की स्वरूप हैं ॥३४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवादविषयक लक्ष्मी-उपाख्यान में लक्ष्मी के स्वरूप और पूजा आदि के वर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३५॥

अध्याय ३६

इन्द्र को दुर्वासा का शाप

नारद बोले—वैकुण्ठ लोक में निवास करनेवाली परमश्रेष्ठ एवं नारायण की प्रेयसी वह महालक्ष्मी देवी जो वैकुण्ठ की अधीश्वरी और सनातनी (जरामरण रहित सदैव एक रूप रहने वाली) हैं, वह पृथ्वी में सिन्धु की पुत्री कैसे हुईं ? तथा उसका ध्यान, कवच और पूजा विधान का समस्त क्रम क्या है ? ॥१-२॥ एवं आदि काल में सर्वप्रथम उनकी स्तुति किसने की, मुझे बताने की कृपा करें ॥३॥

नारायण बोले—हे नारद ! पहले समय में दुर्वासा जी के शाप के कारण इन्द्र की श्री नष्ट हो गयी और उसी कारण देववृन्द तथा मर्त्यलोक भी श्रीविहीन हो गया ॥४॥ हे नारद ! अनन्तर रुष्ट होने के कारण वह लक्ष्मी

---

१. क. °ण कर्दमेन वि० । २. क. च स्तवनं स० ।

लक्ष्मीः स्वर्गादिकं त्यक्त्वा रुष्टा परमदुःखिता । गत्वा लीना च वैकुण्ठे महालक्ष्यां च नारद ॥५॥
तदा शोकाद्ययुर्देवा दुःखिता ब्रह्मणः सभाम् । ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ययुर्वैकुण्ठमेव च ॥६॥
वैकुण्ठे शरणापन्ना देवा नारायणे परे । अतीव दैन्ययुक्ताश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः ॥७॥
तदा लक्ष्मीश्च कलया पुरा नारायणाज्ञया । बभूव सिन्धुकन्या सा शक्रसंपत्स्वरूपिणी ॥८॥
तदा मथित्वा क्षीरोदं देवा दैत्यगणैः सह । संप्रापुश्च वरं लक्ष्म्या ददृशुस्तां च तत्र हि ॥९॥
सुरादिभ्यो वरं दत्त्वा वनमालां च विष्णवे । ददौ प्रसन्नवदना तुष्टा क्षीरोदशायिने ॥१०॥
देवाश्चाप्यसुराक्रान्तं राज्यं प्रापुश्च तद्वरात् । तां संपूज्य च संस्तूय सर्वत्र च निरापदः ॥११॥

नारद उवाच

कथं शशाप दुर्वासा मुनिश्रेष्ठः पुरंदरम् । केन दोषेण वा ब्रह्मन्ब्रह्मिष्ठं ब्रह्मवित्पुरा ॥१२॥
ममन्थे केन रूपेण जलधिस्तैः सुरादिभिः । केन स्तोत्रेण सा देवी शक्रे साक्षाद्बभूव ह ॥१३॥
को वा तयोश्च संवादो ह्यभवत्तद्वद प्रभो ॥१४॥

नारायण उवाच

मधुपानप्रमत्तश्च त्रैलोक्याधिपतिः पुरा । क्रीडां चकार रहसि रम्भया सह कामुकः ॥१५॥

परम दुःखी होकर स्वर्ग आदि को त्याग कर वैकुण्ठ चली गयीं और वहाँ महालक्ष्मी में लीन हो गयीं ॥५॥ उस समय शोकाकुल के कारण देवगण दुःखी होकर ब्रह्मा की सभा में गये और वहाँ उन्हें आगे करके देवों ने वैकुण्ठ लोक की यात्रा की ॥६॥ वहाँ पहुँच कर उन लोगों ने सब से परे रहने वाले नारायण देव की शरण प्राप्त की। उस समय अत्यन्त दीनता के कारण देवों के कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये थे ॥७॥ उपरान्त लक्ष्मी ने अपनी कला (अंश) द्वारा सिन्धु की कन्या होकर पुनः जन्म ग्रहण किया, जो इन्द्र की सम्पत्ति स्वरूप थीं और जिन्हें पूर्वकाल में ही नारायण देव की (इसके लिए) आज्ञा हो चुकी थी ॥८॥ अनन्तर देवों ने दैत्यों के साथ क्षीरसागर का मन्थन किया, जिससे उन्हें लक्ष्मी का दर्शन और वरदान दोनों वहाँ प्राप्त हुए ॥९॥ अनन्तर प्रसन्नमुख लक्ष्मी ने संतुष्ट होकर देवताओं को वर प्रदान किया और क्षीरसागर में शयन करने वाले भगवान् विष्णु को वनमाला पहना कर उनका वरण किया ॥१०॥ वरदान प्राप्त होने के पश्चात् देवों ने असुरों द्वारा अपहरण किया हुआ अपना राज्य पुनः प्राप्त किया और उन लोगों ने लक्ष्मी जी की सविधि अर्चा एवं स्तुति की, जिससे सर्वत्र देवगण उसी क्षण निरापद हो गये ॥११॥

नारद बोले—हे ब्रह्मन्! पूर्वकाल में मुनिश्रेष्ठ एवं ब्रह्मवेत्ता दुर्वासा ने ब्राह्मण भक्त इन्द्र को क्यों शाप दिया, उनका क्या अपराध था? हे प्रभो! देवों ने किस प्रकार समुद्र का मन्थन किया, किस स्तोत्र द्वारा स्तुति करने पर इन्द्र को लक्ष्मी का साक्षात्कार (दर्शन) हुआ और उन दोनों का क्या संवाद हुआ, ये सभी बातें मुझे बतायें ॥१२-१४॥

नारायण बोले—पहले समय में एक बार तीनों लोकों के अधीश्वर (इन्द्र) मधु (आसव) पान से प्रमत्त होकर एकान्त स्थान में रम्भा के साथ अति कामुकता से काम क्रीड़ा कर रहे थे ॥१५॥ उसने उनके चित्त को अपने

कृत्वा क्रीडां तया सार्धं कामुक्या हृतचेतनः । तस्थौ तत्र महारण्ये कामोन्मथितमानसः ॥१६॥
कैलासशिखरं यान्तं वैकुण्ठादृषिपुंगवम् । दुर्वाससं ददर्शेन्द्रो ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥१७॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डसहस्रप्रभमीश्वरम् । प्रतप्तकाञ्चनाभासं जटाभारमहोज्ज्वलम् ॥१८॥
शुक्लयज्ञोपवीतं च चीरं दण्डं कमण्डलुम् । महोज्ज्वलं च तिलकं बिभ्रतं चन्द्रसंनिभम् ॥१९॥
समन्वितं शिष्यवर्गैर्वेदवेदाङ्गपारगैः । दृष्ट्वा ननाम शिरसा संभ्रमात्तं पुरंदरः ॥२०॥
शिष्यवर्गं स भक्त्या वै तुष्टाव च मुदाऽन्वितः । मुनिना च सशिष्येण तस्मै दत्ताः शुभाशिषः ॥२१॥
विष्णुदत्तं पारिजातपुष्पं च सुमनोहरम् । मृत्युरोगजराशोकहरं मोक्षकरं ददौ ॥२२॥
शक्रः पुष्पं गृहीत्वा च प्रमत्तो राजसंपदा । भ्रमेण स्थापयामास तत्र वै हस्तिमस्तके ॥२३॥
हस्ती तत्स्पर्शमात्रेण रूपेण च गुणेन च । तेजसा वयसा कान्त्या विष्णुतुल्यो बभूव सः ॥२४॥
त्यक्त्वा शक्रं गजेन्द्रश्चाप्यगच्छद् घोरकाननम् । न शशाक महेन्द्रस्तं रक्षितुं तेजसा मुने ॥२५॥
तत्पुष्पं त्यक्तवन्तं च दृष्ट्वा शक्रं मुनीश्वरः । तं शशाप महातेजाः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥२६॥

दुर्वासा उवाच

अरे श्रिया प्रमत्तस्त्वं कथं मामवमन्यसे । मद्दत्तपुष्पं गर्वेण त्यक्तवान्हस्तिमस्तके ॥२७॥

अधीन कर लिया और उस कारण वे काम से मथितचित्त होकर अवस्थित हुए ॥१६॥ दैव संयोग से उसी समय वैकुण्ठ से कैलाश जाते हुए ऋषिश्रेष्ठ दुर्वासा, जो ब्रह्मतेज से प्रज्वलित थे, इन्द्र को वहाँ आते हुए दिखाई पड़े ॥१७॥ वे ग्रीष्म काल के मध्याह्न मार्तण्ड (सूर्य) की सहस्रों किरणों की भाँति प्रभापूर्ण, ईश्वर, अति संतप्त सुवर्ण की सी कान्ति वाले, अति शुभ्र जटाभार, शुक्ल यज्ञोपवीत, वस्त्र, दण्ड, कमण्डलु और भाल में चन्द्रमा की भाँति अत्यन्त उज्ज्वल तिलक धारण किए हुए थे ॥१८-१९॥ इस प्रकार वेदों और वेदांगों के पारगामी विद्वान् शिष्य वर्गों से वे युक्त थे। उन्हें देखकर इन्द्र ने शिर से सहसा प्रणाम किया ॥२०॥ और प्रसन्न मन से भक्तिपूर्वक उनके शिष्यों की भी स्तुति की। अनन्तर शिष्यों समेत मुनि ने उन्हें शुभाशीर्वाद प्रदान किया ॥२१॥ और भगवान् विष्णु का दिया हुआ वह पारिजात का पुष्प भी उन्हें प्रदान किया, जो अति मनोहर, तथा मृत्यु, रोग, जरा एवं शोक का नाशक और मोक्षप्रद था ॥२२॥ किन्तु राजसम्पत्ति से प्रमत्त होने के नाते इन्द्र ने उस पुष्प को लेकर भ्रमवश उसे अपने गजराज के मस्तक पर रख दिया ॥२३॥ जिसके स्पर्श मात्र से वह गजराज उसी समय रूप, गुण, तेज, अवस्था और कान्ति में भगवान् विष्णु के समान हो गया ॥२४॥ हे मुने! वह गजराज उसी समय इन्द्र को वहाँ त्याग कर स्वयं किसी अन्य घोर जंगल में चला गया और महेन्द्र भी उस समय उसे अपने तेज से रोक न सके ॥२५॥ उपरान्त मुनियों के अधिपति एवं महातेजस्वी दुर्वासा के नेत्र, उस पुष्प का त्याग करते हुए इन्द्र को देख कर क्रोध से रक्त-वर्ण के हो गए। उन्होंने उसी निमित्त उन्हें शाप दे दिया ॥२६॥

दुर्वासा बोले—अरे! तुम लक्ष्मी से अति मतवाला हो गये हो क्या? यह हमारा अपमान क्यों कर रहे हो कि मेरे दिए हुए पुष्प को तुमने गर्व से हाथी के मस्तक पर डाल दिया है? (तुम्हें नहीं मालूम है कि) भगवान् विष्णु

विष्णोर्निवेदितं पुष्पं नैवेद्यं वा फलं जलम् । प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्महा जनः ॥२८॥
भ्रष्टश्रीर्भ्रष्टबुद्धिश्च भ्रष्टज्ञानो[1] भवेन्नरः । यस्त्यजेद्विष्णुनैवेद्यं भाग्येनोपस्थितं शुभम् ॥२९॥
प्राप्तिमात्रेण यो भुङ्क्ते भक्त्या विष्णुनिवेदितम् । पुंसां शतं समुद्धृत्य जीवन्मुक्तः स्वयं भवेत् ॥३०॥
विष्णुनैवेद्यभोजी यो नित्यं तु प्रणमेद्धरिम् । पूजयेत्स्तौति वा भक्त्या स विष्णुसदृशो भवेत् ॥३१॥
तत्स्पर्शवायुना सद्यस्तीर्थौघश्च विशुध्यति । तत्पादरजसा मूढ सद्यः पूता वसुंधरा ॥३२॥
पुंश्चल्यन्नमवीरान्नं शूद्रश्राद्धान्नमेव च । यद्धरेरनिवेद्यं च वृथामांसमभक्षकम् ॥३३॥
शिवलिङ्गप्रदत्तान्नं यदन्नं शूद्रयाजिनाम् । चिकित्सकद्विजानां च देवलान्नं तथैव च ॥३४॥
कन्याविक्रयिणामन्नं यदन्नं योनिजीविनाम् । अनुष्णान्नं पर्युषितं सर्वभक्ष्यावशेषितम् ॥३५॥
शूद्रापतिद्विजान्नं च वृषवाहद्विजान्नकम् । अदीक्षितद्विजान्नं च यदन्नं शवदाहिनाम् ॥३६॥
अगम्यागामिनां चैव द्विजानामन्नमेव च । मित्रद्रुहां कृतघ्नानामन्नं विश्वासघातिनाम् ॥३७॥
मिथ्यासाक्ष्यप्रदानां च ब्राह्मणानां तथैव च । एतसर्वं विशुद्ध्येत विष्णुनैवेद्यभक्षणात् ॥३८॥
श्वपचो विष्णुसेवी च वंशानां कोटिमुद्धरेत् । हरेरभक्तो विप्रश्च स्वं च रक्षितुमक्षमः ॥३९॥

को अर्पित किया हुआ पुष्प, नैवेद्य, फल और जल हाथ में आते ही खा लेना चाहिये उसके त्याग करने से मनुष्य ब्रह्मघाती होता है। इसीलिए भगवान् विष्णु का शुभ नैवेद्य (किसी प्रकार) भाग्य से प्राप्त होने पर जो मनुष्य उसका त्याग करता है, वह लक्ष्मी, बुद्धि और ज्ञान से च्युत होकर भ्रष्ट हो जाता है। और जो भगवान् विष्णु को निवेदित नैवेद्य के प्राप्त होते ही उसे भक्तिपूर्वक खा लेता है, वह अपनी सौ पीढ़ियों के उद्धारपूर्वक स्वयं जीवन्मुक्त हो जाता है ॥२७-३०॥ इस प्रकार भगवान् विष्णु के नैवेद्य का भक्षण करने वाला जो मनुष्य नित्य भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम, पूजा और स्तुति करता है, वह विष्णु के समान होता है ॥३१॥ हे मूढ़ ! उसके स्पर्श-वायु से तीर्थगण तुरन्त शुद्ध हो जाते हैं और उसके चरण रज से पृथ्वी भी तुरन्त पवित्र होती है ॥३२॥ व्यभिचारिणी स्त्री, विधवा स्त्री तथा शूद्र के श्राद्ध का अन्न और भगवान् विष्णु को निवेदन न किया गया अन्न, ये सब व्यर्थ और मांस के समान अभक्ष्य होते हैं ॥३३॥ किन्तु शिवलिंग पर अर्पित किया हुआ अन्न, शूद्रों को यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण का अन्न, चिकित्सक (वैद्य) ब्राह्मण का अन्न, देवल (मन्दिर के पुजारी ब्राह्मण) का अन्न, कन्याविक्रेता का अन्न, योनि-जीवी (किसी भी स्त्री के व्यभिचार द्वारा जीविका चलाने वाले) का अन्न, ठंडा और वासी अन्न, सब के खाने से बचा हुआ अन्न, शूद्रा स्त्री के पति होने वाले ब्राह्मण का अन्न, बैलों पर लादने वाले ब्राह्मण का अन्न, दीक्षा रहित ब्राह्मण का अन्न, शवदाही (मुर्दा जलाने का काम करने वाले) का अन्न अगम्या स्त्री के साथ गमन करने वाले ब्राह्मण का अन्न, मित्रद्रोही, कृतघ्न, विश्वासघाती और झूठी गवाही देने वाले ब्राह्मण का अन्न, यह सब खाने वाला व्यक्ति भगवान् विष्णु के नैवेद्य भक्षण करने से शुद्ध हो जाता है ॥३४-३८॥ इतना ही नहीं विष्णु की सेवा करने वाला श्वपच (मेहतर आदि) भी अपनी करोड़ों पीढ़ियों का उद्धार करता है और विष्णुभक्तिहीन ब्राह्मण अपनी भी रक्षा करने में असमर्थ रहता है ॥३९॥

१क. °ष्टराज्यो म०।

अज्ञानाद्यदि गृह्णाति विष्णोर्निर्माल्यमेव च । सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥४०॥
ज्ञात्वा भक्त्या च गृह्णाति विष्णोर्नैवेद्यमेव च । कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥४१॥
यस्मात्संस्थापितं पुष्पं गर्वाद्वै हस्तिमस्तके । तस्माद्युष्मान्परित्यज्य यातु लक्ष्मीर्हरेः पदम् ॥४२॥
नारायणस्य भक्तोऽहं न बिभेमीश्वरं विधिम् । कालं मृत्युं जरां चैव कानन्यान्गणयामि च ॥४३॥
किं करिष्यति ते तातः कश्यपश्च प्रजापतिः । बृहस्पतिर्गुरुश्चैव निःशङ्कस्य च मे हरेः ॥४४॥
इदं पुष्पं यस्य मूर्ध्नि तस्य वै पूजनं पुरः । मूर्ध्नि च्छिन्ने शिवशिशोश्छित्त्वेदं योजयिष्यति ॥४५॥
इति श्रुत्वा महेन्द्रश्च धृत्वा तच्चरणद्वयम् । उच्चैः रुरोद शोकार्तस्तमुवाच भयाकुलः ॥४६॥

इन्द्र उवाच

दत्तः समुचितः शापो महत्यं मत्ताय हे प्रभो । हृता त्वया चेत्संपत्तिः कियज्ज्ञानं च देहि मे ॥४७॥
ऐश्वर्यं विपदां बीजं प्रच्छन्नज्ञानकारणम् । मुक्तिमार्गार्गलं दाढ्यार्द्धरिभक्तिव्यपायकम् ॥४८॥
जन्ममृत्युजरारोगशोकदुःखकरं[1] परम् । संपत्तितिमिरान्धश्च मुक्तिमार्गं न पश्यति ॥४९॥
संपन्मत्तः सुमूढश्च सुरामत्तः सचेतनः । बान्धवैर्वेष्टितः सोऽपि बन्धुद्वेषकरो मुने ॥५०॥

भगवान् विष्णु के निर्माल्य को यदि अज्ञान से भी कोई ग्रहण करता है, तो वह अपने सात जन्मों के पाप से मुक्त हो जाता है इसमें संशय नहीं ॥४०॥ और जानते हुए भक्तिपूर्वक विष्णु-नैवेद्य ग्रहण करने वाला निःसन्देह अपने करोड़ों जन्मों के पाप से मुक्त हो जाता है ॥४१॥ अतः जिस लिए अभिमान से तुमने उस पुष्प को हाथी के मस्तक पर रख दिया इसलिए लक्ष्मी तुम्हें त्याग कर भगवान् के यहाँ चली जायँगी ॥४२॥ मैं नारायण देव का भक्त हूँ, इसीलिए ईश्वर (शिव), ब्रह्मा, काल, मृत्यु, जरा (वृद्धता) को नहीं डरता हूँ और अन्यों की गणना ही क्या है ॥४३॥ मैं भगवान से भी निःशंक रहता हूँ; इसलिए तुम्हारे पिता प्रजापति कश्यप और गुरु बृहस्पति हमारा क्या कर लेंगे ॥४४॥ यह पुष्प जिसके मस्तक पर रहेगा, उसका सदैव पूजन होगा और शिव के पुत्र का शिर कट जाने पर उनके धड़ पर वही काट कर जोड़ दिया जायेगा ॥४५॥ इतना सुन कर महेन्द्र ने दुःखी और भयभीत होकर उनके दोनों चरण पकड़ लिये और ऊँचे स्वर से चिल्ला कर रुदन करने लगे ॥४६॥

इन्द्र बोले—हे प्रभो! मुझ मतवाले को शाप देकर आपने उचित ही किया है। और आपने यदि मेरी सम्पत्ति का अपहरण कर लिया तो मुझे कुछ ज्ञान ही प्रदान करें ॥४७॥ क्योंकि ऐश्वर्य ही विपत्ति का बीज, छिपे हुए ज्ञान (की प्राप्ति) का कारण, मोक्षमार्ग की अर्गला, दृढ़ता से हरिभक्ति का बाधक और जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, शोक एवं दुःख का परम उत्पादक है। सम्पत्ति रूपी अन्धकार से अन्धा बना मनुष्य मुक्ति-मार्ग को नहीं देख पाता है। हे मुने! सम्पत्ति से मतवाला, अत्यन्त मूढ़ तथा मदमत्त व्यक्ति चेतना से युक्त तथा बान्धवों से घिरा हुआ होने पर भी बन्धुओं से द्वेष करता है ॥४८

१क. °कमीतिकरं प०।

सम्पन्मदप्रमत्तश्च विषयान्धश्च विह्वलः । महाकामी साहसिकः सत्त्वमार्गं न पश्यति ॥५१॥
द्विविधो विषयान्धश्च राजसस्तामसः स्मृतः । अशास्त्रज्ञस्तामसश्च शास्त्रज्ञो राजसः स्मृतः ॥५२॥
शास्त्रे च द्विविधं मार्गं निर्दिष्टं मुनिपुंगव । प्रवृत्तिबीजमेकं च निवृत्तेः कारणं परम् ॥५३॥
चरन्ति जीविनश्चाऽऽदौ प्रवृत्तौ दुःखवर्त्मनि । स्वच्छन्दे चाप्रसन्ने च निर्विरोधे च संततम् ॥५४॥
आपातमधुरे लोभात्क्लेशे च सुखमानिनः । परिणामोत्पत्तिबीजे जन्ममृत्युजराकरे ॥५५॥
अनेकजन्मपर्यन्तं कृत्वा च भ्रमणं मुदा । स्वकर्मविहितायां च नानायोन्यां क्रमेण च ॥५६॥
ततः कृष्णानुग्रहाच्च सत्सङ्गं लभते जनः । सहस्रेषु शतेष्वेको भवाब्धेः पारकारणम् ॥५७॥
साधुः सत्त्वप्रदीपेन मुक्तिमार्गं प्रदर्शयेत् । तदा करोति यत्नं च जीवो बन्धनखण्डने ॥५८॥
अनेकजन्मयोगेन तपसाऽनशनेन च । तदा लभेन्मुक्तिमार्गं निर्विघ्नं सुखदं परम् ॥५९॥
इदं श्रुतं गुरोर्वक्त्रात्प्रसंगावसरेण च । नहि पृष्टमतोऽन्यच्च भवदुःखौघवेष्टितः ॥६०॥
अधुना विधिना दत्तो विपत्तौ ज्ञानसागरः । संपद्रूपा विपदियं मम निस्तारकारिणी ॥६१॥

॥५०॥ सम्पत्ति रूपी मद (नशे) से महामत्त प्राणी (सदैव) विषयों (भोगों) से अन्धा, व्याकुल, महाकामी तथा साहसिक होने से सात्त्विक मार्ग को नहीं देखता है ॥५१॥ राजस और तामस भेद से विषयान्ध प्राणी दो प्रकार के होते हैं, जिनमें तामस शास्त्रज्ञान से रहित और राजस शास्त्रज्ञ होते हैं ॥५२॥ हे मुनिपुंगव ! शास्त्र में (जीवों) के लिए) दो प्रकार के मार्ग बताये गये हैं जिनमें पहला प्रवृत्तिमार्ग का बीज (कारण) है और दूसरा उससे परे निवृत्तिमार्ग का ॥५३॥ जीवसमूह सर्वप्रथम दुःखपूर्ण प्रवृत्ति मार्ग में, जो स्वच्छन्द, प्रसन्नतारहित और निर्बाध है, निरन्तर भ्रमण करता है॥५४॥ यह (प्रवृत्ति मार्ग) आपात मधुर (देखने में अकस्मात् सुन्दर) होते हुए भी दुःखमय है। जीव लोभवश उसी दुःख को सुख मान लेता है, जिसका परिणाम (भविष्य में) उत्पत्ति का कारण होता है और इसीलिए इसे जन्म, मृत्यु एवं जरा (बुढ़ाई) का कर्ता कहते हैं ॥५५॥ अपने कर्मानुसार विविध योनियों में क्रमशः जीववृन्द घूमा करते हैं। इस प्रकार अनेक जन्म पर्यन्त भ्रमण करते हुए सहस्रों सैकड़ों में किसी एक मनुष्य को भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से सत्संग की प्राप्ति होती है, जो इस संसारसागर को पार करने का एकमात्र कारण होता है ॥५६-५७॥ क्योंकि साधु (सज्जन) लोग सत्त्वरूपी दीपक से मुक्ति का मार्ग दिखा देते हैं और तभी यह जीव अपने (कर्म) बन्धन को काटने के लिए यत्न करता है ॥५८॥ अनन्तर अनेक जन्म के योगाभ्यास, तप एवं अनशन करने के द्वारा वह परम सुखदायक मुक्ति-मार्ग को निर्विघ्न प्राप्त करता है ॥५९॥ यद्यपि (किसी) प्रसंग के अवसर पर गुरु के मुख से हमने यह सुन लिया था किन्तु संसार के दुःखों से घिरा रहने के कारण इससे अधिक और कुछ पूछा नहीं ॥६०॥ विपत्ति के इस अवसर पर विधि (दैव) ने हमें ज्ञान का सागर ही दे दिया है। यह विपत्ति हमारी सम्पत्ति रूप है, इसी से हमारा उद्धार

ज्ञानसिन्धो दीनबन्धो मह्यं दीनाय साम्प्रतम् । देहि किंचिज्ज्ञानसारं भवपारं दयानिधे ॥६२॥
इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रहस्य ज्ञानिनां गुरुः । ज्ञानं कथितुमारेभे हृष्टतुष्टः सनातनः ॥६३॥

दुर्वासा उवाच

अहो महेन्द्र माङ्गल्यमात्मानं द्रष्टुमिच्छसि । आपाततो दुःखबीजं परिणामसुखावहम् ॥६४॥
स्वगर्भयातनानाशपीडाखण्डनकारणम् । दुष्पारासारदुर्वारसंसारार्णवतारकम् ॥६५॥
कर्मवृक्षाङ्कुरच्छेदकारणं सर्वतारकम् । संतोषसंततिकरं प्रवरं सर्ववर्त्मनाम् ॥६६॥
[1]दानेन तपसा वाऽपि व्रतेनानशनादिना । कर्मणा स्वर्गभोगादिसुखं भवति जीविनाम् ॥६७॥
काम्यानां कर्मणां चैव मूलं संछिद्य यत्नतः । अधुनेदं मोक्षबीजं संकल्पाभाव एव च ॥६८॥
यत्कर्म सात्त्विकं कुर्यादसंकल्पितमेव च । सर्वं कृष्णार्पणं कृत्वा परे ब्रह्मणि लीयते ॥६९॥
सांसारिकाणामेतत्तु निर्वाणं मोचकं विदुः । नेच्छन्ति वैष्णवास्तत्तु सेवाविरहकातराः ॥७०॥
सेवां कुर्वन्ति ते नित्यं विधायोत्तमदेहकम् । गोलोके वाऽपि वैकुण्ठे तस्यैव परमात्मनः ॥७१॥
हरिसेवादिरूपां च मुक्तिमिच्छन्ति वैष्णवाः । जीवन्मुक्ताश्च ते शक्र स्वकुलोद्धारकारिणः ॥७२॥

हो जायगा। अतः हे ज्ञान के सागर, हे दीनबन्धो, तथा हे दयानिधे! इस समय आप मुझे संसार से पार करने वाला कुछ ज्ञानतत्त्व प्रदान करें॥६१-६२॥ इन्द्र की ऐसी बातें सुनकर ज्ञानियों के गुरु तथा नित्य अत्यन्त सन्तुष्ट दुर्वासा ने हँसकर ज्ञान का वर्णन आरंभ किया॥६३॥

दुर्वासा बोले—हे महेन्द्र! यह अद्भुत बात है कि अब तुम आत्मकल्याण देखना चाहते हो, जो आपाततः (सहसा) तो दुःख का कारण है, किन्तु परिणाम में सुख देने वाला है॥६४॥ अपनी गर्भयातना, नाश तथा पीड़ा के खण्डन का कारण एवं दुष्पार (कठिनता से पार किये जाने वाले), सारहीन और दुर्वार (अनिवार्य) संसारसागर से तारने वाला है॥६५॥ कर्मरूपी वृक्ष के अंकुर के नाश का कारण, सबको तारने वाला, सन्तोष की वृद्धि करने वाला और सभी मार्गों में श्रेष्ठ है॥६६॥ दान, तप, व्रत तथा अनशन आदि कर्मों से जीवों को स्वर्ग-भोगादि सुख प्राप्त होते हैं॥६७॥ अतः सम्प्रति काम्य कर्मों के मूल कारण (संकल्प) का नाश तुम प्रयत्नपूर्वक करो, क्योंकि संकल्परहित कर्म करना ही मोक्ष का कारण है। इसलिए संकल्परहित जितने सात्त्विक कर्म किये जाते हैं, उन्हें कृष्णार्पण कर देने पर व्यक्ति परब्रह्म में लीन हो जाता है॥६८-६९॥संसारी जीवों के लिए यही निर्वाण मोक्ष कहा गया है, जिसे वैष्णव लोग नहीं चाहते हैं, क्योंकि वे (विष्णु) सेवा-वियोग को ही दुःख मानते हैं॥७०॥ (वैष्णव लोग) गोलोक या वैकुण्ठ लोक में उसी परमात्मा का कर उत्तम शरीर धारण, (पार्षद बनकर सदैव) सेवा करते हैं॥७१॥ हे शक्र! वे जीवन्मुक्त और अपने कुल के उद्धारक होते हैं, और भगवान् को सेवा आदि रूप ही मुक्ति चाहते हैं॥७२॥ भगवान् विष्णु

१क. ज्ञाने०।

स्मरणं कीर्तनं विष्णोरर्चनं पादसेवनम् । वन्दनं स्तवनं नित्यं भक्त्या नैवेद्यभक्षणम् ॥७३॥
चरणोदकपानं च तन्मन्त्रजपनं परम् । इदं निस्तारबीजं च सर्वेषामीप्सितं भवेत् ॥७४॥
इदं मृत्युञ्जयज्ञानं दत्तं मृत्युञ्जयेन मे । तच्छिष्योऽहं च निःशङ्कस्तत्प्रसादाच्च सर्वतः ॥७५॥
स जन्मदाता स गुरुः स च बन्धुः सतां परः । यो ददाति हरेर्भक्तिं त्रैलोक्ये च सुदुर्लभाम् ॥७६॥
दर्शयेदन्यमार्गं च विना श्रीकृष्णसेवनम् । स च तं नाशयत्येव ध्रुवं तद्वधभाग्भवेत् ॥७७॥
संततं जगतां कृष्णनाम मङ्गलकारणम् । मङ्गलं वर्धते नित्यं न भवेदायुषो व्ययः ॥७८॥
तेभ्योऽप्यपैति कालश्च मृत्युश्च रोग एव च । संतापश्चैव शोकश्च वैनतेयादिवोरगाः ॥७९॥
कृष्णमन्त्रोपासकश्च ब्राह्मणः श्वपचोऽपि वा । ब्रह्मलोकं समुल्लङ्घ्य याति गोलोकमुत्तमम् ॥८०॥
ब्रह्मणा पूजितः सोऽपि मधुपर्कादिना च यः । स्तुतः सुरैश्च सिद्धैश्च परमानन्दभावनः ॥८१॥
ज्ञानसारं तपःसारं ब्रह्मसारं परं शिवम् । शिवेनोक्तं योगसारं श्रीकृष्णपदसेवनम् ॥८२॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव स्वप्नवत् । भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं प्रकृतेः परम् ॥८३॥
अतीव सुखदं सारं भक्तिदं मुक्तिदं परम् । सिद्धियोगप्रदं चैव दातारं सर्वसंपदाम् ॥८४॥

के नित्य भक्तिपूर्वक स्मरण, कीर्तन, पूजन, चरणसेवन, वन्दन, स्तुति, नैवेद्यभक्षण, चरणोदकपान और उनके परम मन्त्र का जप, यही उद्धार का बीज है और सभी लोगों को अति इष्ट भी है ॥७३-७४॥ यह मृत्युञ्जय-ज्ञान मृत्युञ्जय (शिव) द्वारा मुझे प्राप्त हुआ है। क्योंकि मैं उन्हीं का शिष्य हूँ और उन्हीं की कृपा से चारों ओर निःशंक रहा करता हूँ ॥७५॥ वही सज्जनों के जन्मदाता (पिता), गुरु और श्रेष्ठ बन्धु हैं क्योंकि तीनों लोकों में अति दुर्लभ भगवान् विष्णु की भक्ति वही प्रदान करते हैं ॥७६॥ जो भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा को त्यागकर अन्य मार्ग प्रदर्शन करता है, वह निश्चित उसका नाश करता है इसीलिए उसके वध का भागी उसे ध्रुव होना पड़ता है ॥७७॥ भगवान् श्रीकृष्ण का नाम (जप, कीर्तन आदि) संसार के मंगल का निरन्तर कारण है, इससे नित्य मंगल की वृद्धि होती है और आयु (समय) का अपव्यय नहीं होता है ॥७८॥ गरुड़ को देखकर सर्पों की भाँति काल, मृत्यु, रोग, सन्ताप और शोक सभी उससे भाग जाते हैं ॥७९॥ भगवान् श्रीकृष्ण के मन्त्र की उपासना करने वाला ब्राह्मण हो या चाण्डाल, सभी ब्रह्मलोक को पार कर परमोत्तम गोलोक में चले जाते हैं ॥८०॥ मधुपर्क आदि के द्वारा ब्रह्मा उसकी पूजा करते हैं और उस सिद्ध परमानन्द मूर्ति की देवगण स्तुति करते हैं ॥८१॥ शंकर ने भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-सेवन को ही ज्ञान का सार, तप का सार, ब्रह्म का सार, परमकल्याण एवं योग का सार बतलाया है ॥८२॥ क्योंकि कीटादि से आरम्भ कर ब्रह्मा तक सभी मिथ्या है, इसीलिए केवल राधेश भगवान् श्रीकृष्ण को भजो जो सत्यमूर्ति, परब्रह्म, प्रकृति से परे, अत्यन्त सुखप्रद, (सब के) सार, भुक्ति-मुक्ति-प्रदायक सिद्धियोग के देने वाले और समस्त सम्पत्ति के दाता हैं ॥८३-८४॥ यद्यपि योगी, सिद्ध, यती, तपस्वी आदि इन सभी के लिए कर्म-भोग होता है किन्तु नारायण

योगिनामपि सिद्धानां यतीनां[1] च तपस्विनाम् । सर्वेषां कर्मभोगोऽस्ति न नारायणसेविनाम् ॥८५॥
भस्मसाच्च भवेत्पापं यदुपस्पर्शमात्रतः । ज्वलदग्नौ पातितं च यथा शुष्केन्धनं तथा ॥८६॥
ततो रोगा हि वेपन्ते पापानि च भयानि च । दूरतश्च पलायन्ते यमदूतास्ततो भयात् ॥८७॥
तावन्निबद्धः संसारे कारागारे विधेर्जनः । न यावत्कृष्णमन्त्रं च प्राप्नोति गुरुवक्त्रतः ॥८८॥
कृतकर्मौघभोगाख्यनिगडच्छेदकारणम् । मायाजालोच्छेदकरं मायापाशनिकृन्तनम् ॥८९॥
गोलोकमार्गसोपानं निस्तारे बीजकारणम् । भक्त्यङ्कुरस्वरूपं च नित्यं वृद्धमनश्वरम् ॥९०॥
सारं च सर्वतपसां योगानां साधनं तथा । सिद्धीनां वेदपाठानां व्रतादीनां च निश्चितम् ॥९१॥
दानानां तीर्थस्नानानां यज्ञादीनां पुरंदर । पूजानामुपवासानामित्याह कमलोद्भवः ॥९२॥
पुंसां लक्षं पितॄणां च शतं मातामहस्य च । पूर्वं परं च तत्संख्यं पितरं मातरं गुरुम् ॥९३॥
सहोदरं कलत्रं च बन्धुं शिष्यं च किङ्करम् । समुद्धरेच्च श्वशुरं श्वश्रूकन्यां च तत्सुतम् ॥९४॥
स्वात्मानं च सतीर्थ्यं च गुरुपत्नीं गुरोः सुतम् । उद्धरेद्बलवान्भक्तो मन्त्रग्रहणमात्रतः ॥९५॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । तत्स्पर्शपूतस्तीर्थौघः सद्यः पूता वसुंधरा ॥९६॥
अनेकजन्मपर्यन्तं दीक्षाहीनो भवेन्नरः । तदन्यदेवमन्त्रं च लभते पुण्यलेशतः ॥९७॥

की सेवा करने वाले के लिए नहीं होता है ॥८५॥ क्योंकि प्रज्वलित अग्नि में पड़े हुए सूखे ईंधन की भाँति उनके स्पर्श मात्र से पाप भस्म हो जाता है ॥८६॥ उनसे रोग, पाप और भय काँपते रहते हैं और यमदूत तो भयभीत होकर दूर से ही पलायन कर जाते हैं ॥८७॥ ब्रह्मा के संसार रूपी कारागार में प्राणी तभी तक आबद्ध रहता है, जब तक गुरु के मुख द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण का मन्त्र प्राप्त नहीं करता है ॥८८॥ क्योंकि वह किये हुए कर्म-समूहों के भोगरूपी बेड़ी के नाश का कारण, मायाजाल का विनाशक, मायारूपी पाश को काटने वाला, गोलोक जाने की सीढ़ी, उद्धार के लिए बीज का कारण, भक्तिरूपी अंकुर का स्वरूप, नित्य बढ़ने वाला, नाश-रहित, समस्त तपस्याओं का सारभाग, योगों, वेदपाठों, सिद्धियों और समस्त व्रतों का निश्चित साधन है ॥८९-९१॥ हे पुरन्दर! सभी प्रकार के दानों, स्नानों यज्ञों, पूजाओं और उपवासों का भी वह (प्रधान) साधन है, ऐसा ब्रह्मा ने स्वयं कहा है ॥९२॥ इसलिए मंत्र के केवल ग्रहण मात्र से बलवान् भगवद्भक्त अपने पूर्वजों की एक लाख पीढ़ियों, मातामह (नाना) की सौ पीढ़ियों, माता-पिता, गुरु, सहोदर भाई, स्त्री, बन्धु, शिष्य, सेवक (नौकर), सास-ससुर, कन्या, उसके पुत्र, अपने सहपाठी (साथ में पढ़ने वाले छात्र), गुरुपत्नी और गुरुपुत्र का उद्धार करता है ॥९३-९५॥ तथा मंत्रग्रहण मात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। उसके स्पर्श करने से तीर्थवृन्द पवित्र होते हैं और पृथ्वी भी तुरन्त शुद्ध होती है ॥९६॥

अनेकों जन्म तक दीक्षारहित मनुष्य पुण्य का लेशमात्र प्राप्त होने पर किसी अन्य देवता का मन्त्र प्राप्त करता है ॥९७॥ फिर सात जन्मों तक उस देवता की अपने कर्मानुसार सेवा

१क. व्रती०। २. जपाना०।

सप्तजन्मसु देवानां कृत्वा सेवां स्वकर्मतः । लभते च रवेर्मन्त्रं साक्षिणः सर्वकर्मणाम् ॥९८॥
जन्मत्रयं भास्करं च सेवित्वा मानवः शुचिः । लभेद्गणेशमन्त्रं च सर्वविघ्नहरं परम् ॥९९॥
जन्मत्रयं तं निषेव्य निर्विघ्नश्च भवेन्नरः । विघ्नेशस्य प्रसादेन दिव्यज्ञानं लभेन्नरः ॥१००॥
तदा ज्ञानप्रदीपेन समालोच्य महामतिः । अज्ञानान्धतमश्छित्त्वा महामायां भजेन्नरः ॥१०१॥
प्रकृतिं विष्णुमायां च दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् । सिद्धिदां सिद्धिरूपां च परमां सिद्धियोगिनीम्[1] ॥१०२॥
वाणीरूपां च[2] पद्मां च भद्रां कृष्णप्रियात्मिकाम् । नानारूपां तां निषेव्य जन्मनां शतकं नरः ॥१०३॥
तत्प्रसादाद्भवेज्ज्ञानी ज्ञानानन्दं तदा भजेत् । कृष्णं ज्ञानाधिदेवं च महादेवं सनातनम् ॥१०४॥
शिवं शिवस्वरूपं च शिवदं शिवकारणम् । परमानन्दरूपं च परमानन्ददायिनम् ॥१०५॥
सुखदं मोक्षदं चैव दातारं सर्वसंपदाम् । अमरत्वपदं चैव दीर्घमायुष्यदं परम् ॥१०६॥
इन्द्रत्वं च मनुत्वं च दातुं शक्तं च लीलया । राजेन्द्रत्वप्रदं चैव ज्ञानदं हरिभक्तिदम् ॥१०७॥
जन्मत्रयं तमाराध्य चाऽऽशुतोषप्रसादतः । सर्वदस्य प्रसादेन शङ्करस्य महात्मनः ॥१०८॥
वरदस्य वरेणैव हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम् । तदा तद्भक्तसंसर्गात्कृष्णमन्त्रं लभेद्ध्रुवम् ॥१०९॥

करने के फलस्वरूप उसे समस्त कर्मों के साक्षी सूर्य का मंत्र प्राप्त होता है ॥९८॥ वह सदाचारी पुरुष तीन जन्मों तक भास्कर की सेवा करने पर सम्पूर्ण विघ्नों के अपहर्ता गणेशदेव का परममन्त्र प्राप्त करता है ॥९९॥ तीन जन्मों तक उनकी सेवा करने पर वह विघ्नबाधा रहित हो जाता है और गणेश के प्रसाद से उसे दिव्यज्ञान की प्राप्ति हो जाती है ॥१००॥ पश्चात् वह महाबुद्धिमान् मनुष्य उस ज्ञानदीप द्वारा भलीभाँति विचार कर और अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करके उस महामाया की सेवा करता है, जिसे प्रकृति, भगवान् विष्णु की माया, दुर्गति-नाशिनी दुर्गा, सिद्धिप्रदा, सिद्धिस्वरूपा, परम सिद्धियोगिनी, सरस्वतीरूपा और भगवान् कृष्ण की प्रियास्वरूपा भद्र-मूर्ति कमला कहा जाता है। अनेक रूप वाली उस भगवती की सौ जन्मों तक सेवा करने पर उनकी कृपा से वह मनुष्य ज्ञानी हो जाता है और तब उस ज्ञानानन्द को भजता है, जो कृष्ण, ज्ञान के अधीश्वर, सनातन (नित्य), शिव, कल्याणस्वरूप, कल्याणप्रद, कल्याण के कारण, परमानन्द रूप, परमानन्ददाता, सुखदायक, मोक्ष-प्रद, समस्त सम्पत्ति के देने वाले, अमरत्व और परम दीर्घायु प्रदान करने वाले हैं ॥१०१-१०६॥ वे इन्द्रत्व और मनुत्व को लीलापूर्वक देने में समर्थ हैं तथा राजेन्द्रत्व, ज्ञान और भगवान् की भक्ति देने वाले भी हैं। आशुतोष (शिव) की कृपा से तीन जन्मों तक उनकी आराधना करके सर्वदायक एवं वरदायक महात्मा शंकर की कृपा से ही मनुष्य भगवान् की भक्ति निश्चित प्राप्त करता है तथा भगवद्भक्त के सम्पर्क से उसे उस समय भगवान् श्रीकृष्ण का मन्त्र भी निश्चित प्राप्त हो जाता है ॥१०८-१०९॥

१क. ०रूपिणाम् । २क. च प्रथमां म० ।

निर्मलज्ञानदीपेन प्रदीप्तेन च तत्त्ववित् । ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव पश्यति ॥११०॥
दयानिधेः प्रसादेन निर्मलज्ञानमालभेत् । वरदस्य वरेणैव हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम् ॥१११॥
तदा निवृत्तिमाप्नोति सारात्सारं परात्पराम् । यत्र देहे लभेन्मन्त्रं तद्देहावधि भारते ॥११२॥
तत्पाञ्चभौतिकं त्यक्त्वा बिर्भति दिव्यरूपकम् । करोति दास्यं गोलोके वैकुण्ठे वा हरेः पदे ॥११३॥
परमानन्दसंयुक्तो मोहादिषु विवर्जितः । न विद्यते पुनर्जन्म पुनरागमनं हरे ॥११४॥
पुनश्च न पिबेत्क्षीरं धृत्वा मातृस्तनं परम् । विष्णुमन्त्रोपासकानां गङ्गादितीर्थसेविनाम् ॥११५॥
स्वधर्मिणां च भिक्षूणां पुनर्जन्म न विद्यते । तीर्थे परित्यजेत्पापं क्रियां कृत्वा हरिं भजेत् ॥११६॥
अयं निरूपितो धात्रा स्वधर्मस्तीर्थसेविनाम् । तन्नाममन्त्रं प्रजपेत्तत्सेवादिषु तत्परः ॥११७॥
तद्व्रतोपवासरत इत्युक्तो विष्णुसेविनाम् । सदन्ने वा कदन्ने वा लोष्टे वा काञ्चने तथा ॥११८॥
समबुद्धिर्यस्य शश्वत्स संन्यासीति कीर्तितः । दण्डं कमण्डलुं रक्तवस्त्रमात्रं च धारयेत् ॥११९॥
नित्यं प्रवासी नैकत्र स्यात्संन्यासीति कीर्तितः । शुद्धाचारद्विजान्नं च भुङ्क्ते लोभादिवर्जितः ॥१२०॥
किंतु किंचिन्न याचेत स संन्यासीति कीर्तितः । न व्यापारी नाऽऽश्रमी च सर्वकर्मविवर्जितः[1] ॥१२१॥

अनन्तर उस तत्त्ववेत्ता को उस प्रदीप्त निर्मल ज्ञान द्वारा ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सारा जगत् मिथ्या दिखायी देता है। इस प्रकार उन दयानिधान के प्रसाद से उसे निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है। वरदायक (शिव) के वरदान द्वारा ही भगवान् की निश्चित भक्ति प्राप्त होने पर उसे सार से भी सार और श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ शान्ति प्राप्त हो जाती है।

जिस शरीर से मन्त्र की प्राप्ति होती है, उसकी अवधि तक वह पुरुष भारत में रहता है। अनन्तर उस पंचतत्त्व के शरीर का त्याग करके दिव्य देह प्राप्त करता है, जिससे गोलोक या वैकुण्ठ लोक में भगवान् के यहाँ दास होकर उनकी सेवा करता है॥११०-११३॥ हे इन्द्र! वह सदैव परमानन्द में मग्न रहने के कारण मोहादि जालों से रहित हो जाता है। पुनः (इस लोक में) आगमन न होने के कारण उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। वह फिर कभी माता का स्तन पकड़ कर दूध नहीं पीता है क्योंकि विष्णु-भक्तों के उपासकों, गंगा आदि तीर्थों की सेवा करने वालों अपने धर्म का पालन करने वालों और भिक्षुओं का पुनर्जन्म नहीं होता है। ॥११४-११५½॥ कर्म-क्रिया करके पाप का त्याग करे और भगवान् का भजन करे, ब्रह्मा ने तीर्थसेवियों का यही स्वधर्म बताया है। विष्णुसेवकों के लिए उनके नाम मन्त्र का जप और उनकी सेवाओं में सदैव तत्पर रहते हुए व्रत-उपवास करना स्वधर्म कहा है। उत्तम अन्न और कदन्न तथा लोहे एवं सुवर्ण में निरन्तर जिसकी समान बुद्धि रहती है उसे 'संन्यासी' कहा गया है। जो दण्ड, कमण्डलु और गेरुआ वस्त्र मात्र धारण करता है तथा नित्य प्रवासी (यात्री) रह कर एक स्थान में नहीं रहता है, उसे संन्यासी कहा जाता है। शुद्ध सदाचारी ब्राह्मण का अन्न भोजन करने वाले, लोभादि दोष रहित और कहीं किसी वस्तु की याचना न करने वाले को 'संन्यासी'

१क. धर्म०।

ध्यायेन्नारायणं शश्वत्स संन्यासीति कीर्तितः । शश्वन्मौनी ब्रह्मचारी संभाषापरिवर्जितः ॥१२२॥
सर्वं ब्रह्ममयं पश्येत्स संन्यासीति कीर्तितः । सर्वत्र समबुद्धिश्च हिंसामायाविवर्जितः ॥१२३॥
क्रोधाहंकाररहितः स संन्यासीति कीर्तितः । अयाचितोपस्थितं च मिष्टामिष्टं च भुक्तवान् ॥१२४॥
न याचते भक्षणार्थी स संन्यासीति कीर्तितः । न च पश्येन्मुखं स्त्रीणां न तिष्ठेत्तत्समीपतः ॥१२५॥
दारवीमपि योषां च न स्पृशेद्यः स भिक्षुकः । अयं संन्यासिनां धर्म इत्याह कमलोद्भवः ॥१२६॥
विपर्यये विनाशश्च जन्म याम्यं भयं भवेत् । जन्मदुःखं याम्यदुःखं जीविनामतिदारुणम् ॥१२७॥
सुरसूकरयोनौ वा गर्भे दुःखं समं सुर । योनौ वा क्षुद्रजन्तूनां पश्वादीनां तथैव च ॥१२८॥
गर्भे स्मरन्ति सर्वे ते कर्म जन्मशतोद्भवम् । विस्मरेन्निर्गतो जीवो गर्भाद्वै विष्णुमायया ।
स्वदेहं पाति यत्नेन सुरो वा कीट एव वा ॥१२९॥
योनेरभ्यन्तरे शुक्रे पतिते पुरुषस्य च । शुक्रं शोणितयुक्तं च सहसा तत्क्षणं भवेत् ॥१३०॥
रक्ताधिक्ये मातृसमश्चेतरे पितुराकृतिः । युग्माहे च भवेत्पुत्रः कन्यका तद्विपर्यये ॥१३१॥
रविभौमगुरूणां च वारे चेत्तद्भवेत्सुतः । अयुग्माहे तदितरे वारे वै कन्यका भवेत् ॥१३२॥

कहा गया है। जो किसी भाँति का व्यापार नहीं करता है, न किसी स्थान में रहता है और समस्त कर्मों से रहित होकर केवल नारायण का ही निरन्तर ध्यान करता है, उसे 'संन्यासी कहा गया है। निरन्तर मौन रहने वाला ब्रह्मचारी संसारी बातों से वर्जित रह कर सब को ब्रह्ममय देखे, उसे 'संन्यासी' कहते हैं। सर्वत्र समान बुद्धि रखने वाला, हिंसा और माया से रहित तथा क्रोध व अहंकार से शून्य हो, उसे 'संन्यासी' कहा जाता है। बिना याचना किये उपस्थित मधुर व अमधर किसी प्रकार के अन्न का भोजन करने वाला और भोजन के लिए कभी भी याचना न करने वाला 'संन्यासी' कहा गया है। जो स्त्रियों का मुख कभी न देखे न उनके समीप ठहरे और काष्ठ की भी बनी हुई स्त्री का स्पर्श न करे वही 'संन्यासी' है। यह संन्यासियों का धर्म है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥११६-१२६॥ इस (धर्म) का विपर्यय होने पर उस प्राणी को जन्म तथा यम-यातना का भय प्राप्त होता है। जीवों के लिए जन्म-दुःख तथा अतिभीषण यमयातना कही गई है ॥१२७॥ हे सुर! इस प्रकार देवता, सूकर तथा पशु आदि छोटे जीवों की योनि में जीव को गर्भ-दुःख समान ही प्राप्त होता है ॥१२८॥ गर्भ में रह कर सभी जीव अपने सैकड़ों जन्मों के किए गये कर्मों का स्मरण करते हैं और पुनः गर्भ से निकलने पर भगवान् विष्णु की माया के कारण वे उसे भूल जाते हैं। देव हो या छोटा कीड़ा हो, सभी अपनी देह की रक्षा सप्रयत्न करते हैं ॥१२९॥ योनि के भीतर पुरुष द्वारा वीर्यपात करने पर वह वीर्य उसी समय सहसा स्त्री के शोणित (रज) से संयुक्त हो जाता है ॥१३०॥ पुनः रक्त अधिक होनेपर देह की आकृति माता के समान होती है और न्यून होने से पिता के समान होती है। युग्म (सम) दिनों में गर्भधारण होने पर पुत्र तथा विषम दिनों में कन्य उत्पन्न होती है ॥१३१॥ रवि, मंगल और बृहस्पति के दिन (गर्भाधान होने से) पुत्र और उससे भिन्न दिन में कन्या उत्पन्न होती है ॥१३२॥ जिसका जन्म प्रथम प्रहर में होता है वह अल्पायु होता है, दूसरे में मध्यमायु,

प्रथमप्रहरे जन्म यस्य सोऽल्पायुरेव च । द्वितीये मध्यमश्चैव तृतीये तत्परो भवेत् ॥१३३॥
चतुर्थे चिरजीवी स्यात्क्षणानामनुरूपकः । दुःखी वाथ सुखी वाऽपि पूर्वकर्मानुरूपतः ॥१३४॥
यादृशे च क्षणे जन्म प्रसवस्तादृशे भवेत् । प्रसूतिक्षणचर्चां च कुर्वन्त्येवं विचक्षणाः ॥१३५॥
कललं त्वेकरात्रेण प्रवृद्धः स्याद्दिने दिने । सप्तमे बदराकारो मासे गण्डुसमो भवेत् ॥१३६॥
मासत्रये मांसपिण्डो हस्तपादादिवर्जितः । सर्वावयवसंपन्नो देही मासे च पञ्चमे ॥१३७॥
भवेत्तु जीवसंचारः षण्मासे सर्वतत्त्ववित् । दुःखी स्वल्पस्थलस्थायी शकुन्त इव पञ्जरे ॥१३८॥
मातृजग्धान्नपानं च भुङ्क्तेऽमेध्यस्थले स्थितः । हाहेति शब्दं कृत्वा च चिन्तयेदीश्वरं परम् ॥१३९॥
एवं च चतुरो मासान्भुक्त्वा परमयातनाम् । प्रेरितो वायुना काले गर्भाद्वै निर्गतो भवेत् ॥१४०॥
दिग्देशकालाव्युत्पन्नो विस्मृतो विष्णुमायया । शश्वद्विण्मूत्रसंयुक्तः शिशुः स्याच्छैशवावधि ॥१४१॥
परायत्तोऽप्यक्षमश्च मशकादिनिवारणे । कीटादिभुक्तो दुःखी च रौति तत्र पुनः पुनः ॥१४२॥
स्तनान्धोऽप्यसमर्थश्च याच्ञां कर्तुमभीप्सिताम् । न वाणी निःसरेत्तस्य पौगण्डावधि सुस्फुटा ॥१४३॥
पौगण्डे यातनां भुक्त्वा प्राप्नुते यौवनं पुनः । न स्मरेन्मायया देही गर्भादेर्यातनां पुनः ॥१४४॥

तीसरे में उससे अधिक और चतुर्थ में समयानुसार चिरायु होता है। पूर्व जन्मों के कर्मानुसार जीव दुःखी या सुखी भीहोता है ॥१३३-१३४॥ जिस क्षण में जन्म होता है उसी के अनुसार दोष गुण युक्त वह बालक होता है। क्योंकि विद्वानों ने इसी प्रकार प्रसूति समय की चर्चा की है ॥१३५॥ रजवीर्य एकत्र होने पर एक रात्रि में कलल (गर्भ का आरंभिक रूप जब वह कुछ कोषों का गोला होता है) उसी दिन से प्रतिदिन प्रवृद्ध होने लगता है और सातवें दिन पूरे बेर फल के समान हो जाता है। पुनः एक मास में गांठ के समान और तीन मास में हाथ पैर रहित मांस पिंड बन जाता है। इस प्रकार यह देही (आत्मा) पाँचवें मास में (शरीर के) समस्त अंगों से युक्त हो जाता है ॥१३६-१३७॥ समस्त तत्त्वों के वेत्ता उस जीव का छठे मास में संचार होता है जो पिंजड़े में पक्षी की भाँति दुःखी होकर अति संकुचित स्थान में स्थित रहता है ॥१३८॥ उस अपवित्र स्थान में स्थित रह कर वह जीव माता के भोजन किये हुए अन्न-पान को खाता है और (असह्य दुःख के कारण) 'हाय-हाय' शब्द करते हुए प्रतिक्षण उस परमेश्वर का चिन्तन करता रहता है ॥१३९॥ इसी प्रकार शेष चार मास उस परम यातना का अनुभव कर के समय पर वायु द्वारा प्रेरित होकर गर्भ से बाहर निकलता है ॥१४०॥ दिशा, देश और काल में अविच्छिन्न उस जीव को उसी समय भगवान विष्णु की माया से (पूर्व) ज्ञान विस्मृत हो जाता है। इस भाँति निरन्तर विष्ठा-मूत्र में लिपटे रह कर वह जीव अपनी शैशवावस्था तक निरा बच्चा रहता है ॥१४१॥ पराधीन रहने के कारण वह मच्छर आदि को भगाने में असमर्थ रहता है, कीड़ों आदि के काटने पर केवल बार-बार रुदन करता है ॥१४२॥ दुग्धपान करते हुए भी वह अपनी अभिलषित की याचना करने में असमर्थ रहता है, क्योंकि पौगण्डावस्था तक उसकी वाणी अति स्फुट (साफ) नहीं निकलती है ॥१४३॥ इस प्रकार पौगण्डावस्था तक यातनाओं का भोग करता हुआ वह युवावस्था प्राप्त करता है, जिसमें वह जीव गर्भादि के दुःखों का स्मरण भी माया से परवश होने के कारण कभी नहीं कर पाता है ॥१४४॥ उन दिनों वह भोजन और स्त्री-सहवास में

आहारमैथुनार्तश्च नानामोहादिवेष्टितः । पुत्रं कलत्रमनुगं यत्नेन परिपालयेत् ॥१४५॥
एवं यावत्समर्थश्च तावदेव हि पूजितः । असमर्थं च मन्यन्ते बान्धवा गोजरं यथा ॥१४६॥
यदाऽतीव जरायुक्तो जडोऽतिबधिरो भवेत् । कफश्वासादियुक्तश्च परायत्तोऽतिमूढवत् ॥१४७॥
तदन्तरेऽनुतापं च कुरुते संततं पुनः । न सेवितं हरेस्तीर्थं सत्सङ्गश्चेति तापनः ॥१४८॥
पुनश्च मानवीं योनिं लभामि भारते यदि । तदा तीर्थं गमिष्यामि भजे वै कृष्णमित्यहो ॥१४९॥
इत्येवमादि मनसि कुर्वन्तं तं जडं सुर । गृह्णाति यमदूतश्च काले प्राप्तेऽतिदारुणः ॥१५०॥
स पश्येद्यमदूतं च पाशहस्तं च दण्डिनम् । अतीव कोपरक्ताक्षं विकृताकारमुल्बणम् ॥१५१॥
दुर्निवार्यमुपायैश्च बलिष्ठं च भयङ्करम् । दुर्दृश्यं सर्वसिद्धिज्ञं सर्वादृष्टं पुरःस्थितम् ॥१५२॥
दृष्टमात्रान्महाभीतो विण्मूत्रं च समुत्सृजेत् । तदा प्राणांस्त्यजेत्सद्यो देहं वै पाञ्चभौतिकम् ॥१५३॥
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं गृहीत्वा यमकिङ्करः । विन्यस्य भोगदेहे च स्वस्थानं प्रापयेद्द्रुतम् ॥१५४॥
जीवो गत्वा यमं पश्येत्सर्वधर्मज्ञमेव च । रत्नसिंहासनस्थं च सस्मितं सुस्थिरं परम् ॥१५५॥

लिप्त, अनेक भाँति के मोहजाल से आच्छन्न तथा आगे बच्चों के उत्पन्न होने पर उनमें एवं स्त्री में सदा निरत रहकर यत्नपूर्वक पालन-पोषण करता है॥१४५॥ अनन्तर जब तक वह (परिवार के पालन-पोषण में) समर्थ रहता है तभी तक घर वाले उसका सम्मान करते हैं और असमर्थ हो जाने पर उसे बन्धु आदि गोजर (बुड्ढे बैल) की भाँति मानते हैं॥१४६॥ इस प्रकार जब वह अत्यन्त वृद्ध, अति बधिर (बहरा), खांसी और श्वास आदि के रोगों से युक्त और अत्यन्त मूढ के समान पराधीन हो जाता है, उस बीच फिर निरन्तर (अपने किये पर) अनुताप करता रहता है और कहता भी है कि—मैंने भगवान् के तीर्थों की सेवा कभी नहीं की और कभी (महात्माओं का) सत्संग भी नहीं किया॥१४७-१४८॥ अब यदि भारत में पुनः कभी मनुष्य देह मिली, तो तीर्थयात्रा अवश्य करूँगा और (साथ-साथ) भगवान् कृष्ण का भजन भी करता रहूँगा॥१४९॥ हे सुर! इस प्रकार केवल मन में सोचविचार करते हुए उस जड़ जीव को अवसर के प्राप्त होते अति भीषण यमदूत पकड़ लेते हैं॥१५०॥ और वह उन यमदूतों को उस समय देखता भी है, जो हाथ में फांस और दण्ड लिए, अति कोप के कारण रक्त नेत्र तथा विकृत आकार (भयंकर रूप) के दिखायी देते हैं। वे यमदूत उपायों द्वारा न रोकने योग्य, बलवान् एवं भयंकर हैं। उनके दर्शन अति दुःखप्रद होते हैं। वे समस्त सिद्धियों के ज्ञाता एवं अदृश्य होकर (प्राणी के) सामने ही स्थित रहते हैं॥१५१-१५२॥ उस समय जीव उन्हें देखते ही महाभयभीत होकर विष्ठा-मूत्र करने लगता है। अनन्तर इस पाञ्चभौतिक शरीर और प्राणों के त्याग करते समय यमदूत उस अंगूठे मात्र आकार वाले पुरुष को पकड़ कर भोग देह (सूक्ष्मदेह) में रख देते हैं और शीघ्रता से उसे अपने स्थान (यमपुर) ले जाते हैं॥१५३-१५४॥ अनन्तर जीव वहाँ पहुँच कर यम को देखता है, जो समस्त धर्मों के ज्ञाता, रत्नखचितसिंहासनासीन, मन्द मुसुकान करते हुए परम सुस्थिर रहते हैं।

धर्माधर्मविचारज्ञं सर्वज्ञं सर्वतोमुखम् । विश्वेष्वेकाधिकारं च विधात्रा निर्मितं पुरा ॥१५६॥
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् । वेष्टितं पार्षदगणैर्दूतैश्चापि त्रिकोटिभिः ॥१५७॥
जपन्तं श्रीकृष्णनाम शुद्धस्फटिकमालया । ध्यायमानं तत्पदाब्जं पुलकाङ्कितविग्रहम् ॥१५८॥
सगद्गदं साश्रुनेत्रं सर्वत्र समदर्शिनम् । अतीव कमनीयं च शश्वत्सुस्थिरयौवनम् ॥१५९॥
स्वतेजसा प्रज्वलन्तं सुखदृश्यं विचक्षणम् । शरत्पार्वणचन्द्राभं[1] चित्रगुप्तपुरःस्थितम् ॥१६०॥
पुण्यात्मनां शान्तरूपं पापिनां च भयङ्करम् । तं दृष्ट्वा प्रणमेद्देही महाभीतश्च तिष्ठति ॥१६१॥
चित्रगुप्तविचारेण येषां यदुचितं फलम् । शुभाशुभं च कुरुते तदेव रविनन्दनः ॥१६२॥
एवं तेषां गतायाते निवृत्तिर्नास्ति जीविनाम् । निवृत्तिहेतुरूपं च श्रीकृष्णपदसेवनम् ॥१६३॥
इत्येवं कथितं सर्वं वरं प्रार्थय वाञ्छितम् । सर्वं दास्यामि ते वत्स न मेऽसाध्यं च किंचन ॥१६४॥

महेन्द्र उवाच

इन्द्रत्वं च गतं भद्रं किमैश्वर्ये प्रयोजनम् । कल्पवृक्ष मुनिश्रेष्ठ देहि मे परमं पदम् ॥१६५॥
महेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुंगवः । तमुवाच वचः सत्यं वेदोक्तं सारमेव च ॥१६६॥

॥१५५॥ उन्हीं धर्माधर्मविचारशील, सर्वज्ञ और सब ओर मुखवाले को विधाता ने निखिल विश्व का एकाधिकार पूर्वकाल में ही सौंप दिया था ॥१५६॥ जो अग्नि के समान शुद्ध वस्त्र धारण किये, रत्नों के भूषणों से भूषित, पार्षदों तथा तीन करोड़ दूतों से घिरे, शुद्ध स्फटिक की माला से भगवान् कृष्ण के नाम जपते हुए उनके चरणकमल के ध्यान में (प्रसन्नता से) रोमांचित होते रहते हैं ॥१५७-१५८॥ तथा (प्रेम के कारण) गद्गद वाणी वाले, आँखों में (प्रेम के) आंसू भरे सर्वत्र समदर्शी, अति कमनीय, निरन्तर चिरस्थायी यौवन से युक्त, अपने तेज से प्रज्वलित, देखने में सुखप्रद, विद्वान् और शारदीय पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति (मधुर) कान्तियुक्त हैं। उनके सामने ही चित्रगुप्त स्थित रहते हैं। ॥१५९-१६०॥ (यमराज) पुण्यात्माओं के लिए शान्तरूप और पापियों के लिए भयंकर रूप में रहते हैं। ऐसे यम को देखकर जीव उन्हें प्रणाम करता है और महाभयभीत होते हुए वहाँ स्थित रहता है ॥१६१॥ अनन्तर चित्रगुप्त के विचार से जिस जीव का जैसा शुभ-अशुभ कर्म रहता है उसे वैसा ही उचित फल (दण्ड) सूर्यपुत्र (यम) प्रदान करते हैं ॥१६२॥ इस प्रकार गमनागमन बने रहने के कारण जीवों को कभी उससे निवृत्ति (छुटकारा) नहीं मिलती है। क्योंकि निवृत्ति का एकमात्र हेतु तो भगवान् श्रीकृष्ण की चरणसेवा है ॥१६३॥ हे वत्स! इस भाँति मैंने तुम्हें सब कुछ सुना दिया है। अब अपना अभिलषित वरदान मांगो, क्योंकि मैं सब कुछ प्रदान करने में समर्थ हूँ। मेरे लिए कुछ भी असाध्य नहीं है ॥१६४॥

महेन्द्र बोले—हे कल्पवृक्ष! हे मुनिश्रेष्ठ! हमारा इन्द्रत्व (इन्द्रपद) तो चला ही गया, जो हमारे लिए कल्याण रूप था। अब यह ऐश्वर्य्य हमारे लिए किस काम का? अतः हमें अब परमपद (मोक्ष) देने की कृपा करें। ॥१६५॥ महेन्द्र की ऐसी बात सुनकर मुनिपुंगव (श्रेष्ठ) दुर्वासा ने हँसकर उनसे कहा, जो सत्य, वेदोक्त और (सभी का) सार रूप था ॥१६६॥

१क. ०न्द्रास्यं ।

परं पदं विषयिणां महेन्द्रातिसुदुर्लभम् । मुक्तिर्युष्मद्विधानां च न लये प्राकृतेऽपि च ॥१६७॥
आविर्भावः सृष्टिविधौ तिरोभावो लयेऽपि च । यथा जागरणं सुप्तिर्भवत्येव क्रमेण च ॥१६८॥
यथा भ्रमति कालश्च तथा विषयिणो ध्रुवम् । चक्रनेमिक्रमेणैव नित्यमेवेश्वरेच्छया ॥१६९॥
पलमेकं भवेदेव यथा विपलषष्टिभिः । षष्टिभिश्च पलैर्दण्डो मुहूर्तो द्विगुणात्ततः ॥१७०॥
त्रिंशद्भिश्च मुहूर्तैश्च भवेदेव दिवानिशम् । दश पञ्च दिवारात्रिः पक्षमेकं विदुर्बुधाः ॥१७१॥
पक्षाभ्यां शुक्लकृष्णाभ्यां मास एव विधीयते । ऋतुर्द्वाभ्यां च मासाभ्यां संख्याविद्भिः प्रकीर्तितः ॥१७२॥
ऋतुत्रयेणायनं च ताभ्यां द्वाभ्यां च वत्सरः । त्रिंशत्सहस्राधिकैश्च त्रिचत्वारिंशलक्षकैः ॥१७३॥
वत्सरैर्नरमानैश्च युगानां च चतुष्टयम् । षष्ट्याऽधिके पञ्चशते सहस्रे पञ्चविंशतौ ॥१७४॥
युगे नराणां शक्रायुर्मनोरायुः प्रकीर्तितम् । दिग्लक्षेन्द्रनिपातेऽष्टसहस्राधिक एव च ॥१७५॥
निपातो ब्रह्मणस्तत्र भवत्प्राकृतिको लयः । लये प्राकृतिके वत्स कृष्णस्य परमात्मनः ॥१७६॥
चक्षुर्निमेषः सृष्टिश्च पुनरुन्मीलने तथा । ब्रह्मसृष्टिलयानां च संख्या नास्ति श्रुतौ श्रुतम् ॥१७७॥
यथा पृथिव्या रेणूनामित्यूचे चन्द्रशेखरः । एतेषां मोक्षणं नास्ति कथितानि च यानि तु ॥१७८॥

दुर्वासा बोले—हे महेन्द्र! विषय के उपभोग में (सदैव) लिप्त रहने वाले प्राणियों को परमपद प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। तुम्हारे जैसे लोगों की मुक्ति (खण्ड) लय और महाप्रलय में कभी भी संभव नहीं है॥१६७॥ जिस प्रकार (नींद से) जागना और सोना क्रमशः होता है उसी प्रकार तुम लोगों का सृष्टि-काल में जन्म ग्रहण और प्रलय काल में उसी में विलीन होना (सदैव) हुआ करता है॥१६८॥ ईश्वर की इच्छा से चक्के के घेरे की भाँति सदा भ्रमण किया करते जैसे काल घूमता है उसी तरह विषयी (जीव) निश्चित रूप से घूमते रहते हैं॥१६९॥ जिस प्रकार साठ विपल का एक पल होता है, और साठ पल का एक दण्ड तथा दो दण्ड का एक मुहूर्त होता है उसी प्रकार तीस मुहूर्तों का एक दिनरात होता है। विद्वानों ने पन्द्रह दिनरात का एक पक्ष बताया है। शुक्ल और कृष्ण इन दो पक्षों का एक मास कहा गया है। संख्यावेत्ताओं ने दो मास की एक ऋतु कही है। तीन ऋतुओं का एक अयन तथा दो अयनों का एक वर्ष होता है। मनुष्यों के तैंतालिस लाख तीस सहस्र वर्ष के चारों युग होते हैं और मनुष्यों के पच्चीस सहस्र पाँच सौ साठ युग के प्रमाण इन्द्र की और मनु की आयु कही गयी है। इस प्रकार दश लाख आठ सहस्र इन्द्र के पतन (नाश) होने पर ब्रह्मा का पतन होता है उसे ही प्राकृतिक लय कहते हैं। हे वत्स! भगवान् श्रीकृष्ण का नेत्र निमीलन उतने ही समय का होता है और पुनः नेत्र के उन्मीलन करने (खोलने) पर सृष्टि होती है। ब्रह्मा तथा उनकी सृष्टि और प्रलय की संख्या वेद में प्रसिद्ध नहीं है क्योंकि पृथिवी की रेणु (धूलि) के समान वह अनन्त है, ऐसा स्वयं चन्द्रशेखर (शिव) ने कहा है। और ये जितने देव कहे गये हैं कभी मोक्ष नहीं प्राप्त करते हैं॥१७०-१७८॥ अतः हे सुर! यह सृष्टि का रूप है। इसको छोड़कर कोई अन्य वरदान मांगो। हे मुने! मुनीन्द्र

सृष्टिसूत्रस्वरूपं[1] हि चान्यद्वृणु वरं सुर । मुनीन्द्रस्य वचः श्रुत्वा देवेन्द्रो विस्मितो मुने ॥१७९॥
आत्मनः पूर्वमैश्वर्यं वरयामास तत्र वै । तत्प्राप्स्यस्यचिरेणैवेत्युक्त्वा स प्रत्ययौ गृहम् ।
इन्द्रो ललाभ ज्ञानं च न संपदापदं विना ॥१८०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दुर्वासःसुरेन्द्रसं० लक्ष्म्युपा० इन्द्रं प्रति दुर्वासःशापादिकथनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

हरेर्गुणं समाकर्ण्य ज्ञानं प्राप्य पुरंदरः । किं चकार गृहं गत्वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

नारायण उवाच

श्रीकृष्णस्य गुणं श्रुत्वा वीतरागो बभूव सः । वैराग्यं वर्धयामास तस्य ब्रह्मन्दिने दिने ॥२॥
मुनिस्थानाद्गृहं गत्वा स ददर्शामरावतीम् । दैत्यैरसुरसंघैश्च समाकीर्णां भयाकुलाम् ॥३॥

(दुर्वासा) की ऐसी बातें सुनकर देवराज इन्द्र को महान् आश्चर्य हुआ ॥१७९॥ तब इन्द्र ने अपने पूर्व ऐश्वर्य को माँगा 'वह तुम्हें शीघ्र ही प्राप्त होगा' इतना कहकर महर्षि अपने घर चले गये। इन्द्र ने ज्ञान प्राप्त किया किन्तु बिना विपत्ति के संपत्ति नहीं ॥१८०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में दुर्वासा और सुरेन्द्र के संवाद में इन्द्र के प्रति दुर्वासा का शाप आदि कथन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२६॥

अध्याय ३७

कर्मफल का निरूपण

नारद बोले—देवराज इन्द्र ने भगवान् (विष्णु) के गुणों का श्रवण और ज्ञान की प्राप्ति करके घर जाकर क्या किया, यह मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

नारायण बोले—हे ब्रह्मन्! भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों को सुनने से उन्हें (संसार से) विराग हो गया और दिन-प्रतिदिन उनके वैराग्य की वृद्धि होने लगी ॥२॥ उपरान्त मुनि के स्थान से घर जाकर उन्होंने अपनी अमरावती पुरी को देखा; जो दैत्यों और असुर-समूहों से आक्रान्त एवं भय से व्याप्त थी। कहीं बान्धव (देव) गण

---

१ क. ०रूपोऽसि चा० ।

विषण्णबान्धवां चैव बन्धुहीनां च कुत्रचित् । पितृमातृकलत्रादिविहीनामतिचञ्चलाम् ॥४॥
शत्रुग्रस्तां च दृष्ट्वा तामगमद्वाक्पतिं प्रति । शक्रो मन्दाकिनीतीरे ददर्श गुरुमीश्वरम् ॥५॥
ध्यायमानं परं ब्रह्म गङ्गातोये स्थितं परम् । सूर्याभिसंमुखं पूर्वमुखं वै विश्वतोमुखम् ॥६॥
साश्रुनेत्रं पुलकितं परमानन्दसंयुतम् । वरिष्ठं च गरिष्ठं च धर्मिष्ठं चेष्टसेविनम् ॥७॥
श्रेष्ठं च बन्धुवर्गाणामतिश्रेष्ठं च मानिनाम् । ज्येष्ठं च भ्रातृवर्गाणां नेष्टं च सुरवैरिणाम् ॥८॥
दृष्ट्वा गुरुं जपन्तं च तत्र तस्थौ सुरेश्वरः । प्रहरान्ते गुरुं दृष्ट्वा चोत्थितं प्रणनाम सः ॥९॥
प्रणम्य चरणाम्भोजे रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः । वृत्तान्तं कथयामास ब्रह्मशापादिकं तथा ॥१०॥
पुनर्वरो मया लब्धो ज्ञानप्राप्तिं सुदुर्लभाम् । वैरिग्रस्तां स्वीयपुरीं क्रमेणैव सुरेश्वरः ॥११॥
शिष्यस्य वचनं श्रुत्वा सतां बुद्धिमतां वरः । बृहस्पतिरुवाचेदं कोपरक्तान्तलोचनः ॥१२॥

बृहस्पतिरुवाच

श्रुतं सर्वं सुरश्रेष्ठ मारोदीर्वचनं शृणु । न कातरो हि नीतिज्ञो विपत्तौ स्यात्कदाचन ॥१३॥
संपत्तिर्वा विपत्तिर्वा नश्वरा स्वप्नरूपिणी । पूर्वस्वकर्मायत्ता च स्वयं कर्ता तयोरपि ॥१४॥
सर्वेषां च भवत्येव शश्वज्जन्मनि जन्मनि । चक्रनेमिक्रमेणैव तत्र का परिदेवना ॥१५॥

दीन-हीन एवं मन मलिन किए बैठे थे, कहीं कुछ लोगों का घर शून्य पड़ा था, पिता, माता और स्त्री आदि का कहीं पता नहीं था ॥३-४॥ इस भाँति अपनी पुरी को शत्रुग्रस्त देख कर इन्द्र बृहस्पति के पास गये। वहाँ मन्दाकिनी नदी के तट पर उन्होंने अपने गुरु बृहस्पति को देखा, जो परब्रह्म का ध्यान करते हुए गंगा जी के जल में स्थित, पूर्व की ओर मुख किये सूर्याभिमुख, विश्वतोमुख, परमानन्द-मग्न, सजलनेत्र, रोमांचित, अति श्रेष्ठ, अति गौरवपूर्ण, अत्यन्त धार्मिक, इष्टदेव के सेवक, बन्धु वर्गों में श्रेष्ठ, मानियों में अतिश्रेष्ठ, भाइयों में ज्येष्ठ और देव-शत्रु असुरों के अप्रिय हैं ॥५-८॥ गुरु देव को वहाँ जपमग्न देखकर देवराज इन्द्र (उनकी प्रतीक्षा के लिए) वहीं ठहर गये और एक प्रहर के उपरान्त जब गुरुदेव (पूजा से) उठे तो उन्हें देख कर प्रणाम किया ॥९॥ उनके चरण कमल को प्रणाम करके इन्द्र बार-बार ऊँचे स्वर से रोदन करने लगे और अनन्तर अपना ब्रह्मशाप आदि वृत्तान्त कहने लगे ॥१०॥ उस समय सुरराज इन्द्र ने यह भी कहा कि 'शत्रुओं से आक्रान्त अपनी पुरी को तुम फिर अपने अधीन क्रमशः करोगे' यह वरदान तथा दुर्लभ ज्ञान की प्राप्ति भी मुझे हो गई ॥११॥ शिष्य की ऐसी बातें सुन कर सज्जनों एवं बुद्धिमानों में श्रेष्ठ बृहस्पति ने क्रोध से लाल-लाल आँखें करके उनसे कहा ॥१२॥

बृहस्पति बोले—हे सुरश्रेष्ठ! मैंने सब कुछ सुन लिया है, अब रोदन न कर के मेरी बातें सुनो। नीति-निपुण पुरुष विपत्ति के समय कभी भी कातर नहीं होता ॥१३॥ क्योंकि सम्पत्ति-विपत्ति दोनों ही नश्वर और स्वप्न की भाँति हैं। वह अपने जन्मान्तरीय कर्मों के अधीन ही रहती हैं। इसलिए कि इन दोनों का कर्ता वह प्राणी स्वयं होता है ॥१४॥ इस भाँति सभी के प्रत्येक जन्म में यह निरन्तर चक्के के घेरे की भाँति घूमा करती

भुङ्क्ते हि स्वकृतं कर्म सर्वत्रापि च भारते । शुभाशुभं च यत्किंचित्स्वकर्मफलभुक्पुमान् ॥१६॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥१७॥
इत्येवमुक्तं वेदे च कृष्णेन परमात्मना । साम्नि कौथुमशाखायां संबोध्य स्वकुलोद्भवम् ॥१८॥
जन्म भोगावशेषे च सर्वेषां कृतकर्मणाम् । अनुरूपं च तेषां वै भारतेऽन्यत्र चैव हि ॥१९॥
कर्मणा ब्रह्मशापं च कर्मणा च शुभाशिषम् । कर्मणा च महालक्ष्मीं लभेद्दैन्यं च कर्मणा ॥२०॥
कोटिजन्मार्जितं कर्म जीविनामनुगच्छति । न हि त्यजेद्विना भोगात्तं छायेव पुरंदर ॥२१॥
कालभेदे देशभेदे पात्रभेदे च कर्मणाम् । न्यूनताऽधिकता वाऽपि भवेदेव हि कर्मणाम् ॥२२॥
वस्तुदाने च वस्तूनां समं पुण्यं समं दिने । दिनभेदे कोटिगुणमसंख्यं वाऽधिकं ततः ॥२३॥
समदेशे च वस्तूनां दाने पुण्यं समं वृषन् । देशभेदे कोटिगुणमसंख्यं वाऽधिकं ततः ॥२४॥
समे पात्रे समं पुण्यं वस्तूनां कर्तुरेव च । पात्रभेदे शतगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम् ॥२५॥
यथा फलन्ति सस्यानि न्यूनान्यप्यधिकानि च । कर्षकाणां क्षेत्रभेदे पात्रभेदे फलं तथा ॥२६॥
सामान्यदिवसे विप्रे दानं समफलं भवेत् । अमायां रविसंक्रान्त्यां फलं शतगुणं भवेत् ।
चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तफलमेव च ॥२७॥

है, अतः इसमें शोक कैसा ? ॥१५॥ भारतवर्ष में अपने किये कर्म का भोग प्राप्त होता है । पुरुष शुभ-अशुभ जो कुछ अपना कर्म किए रहता है, उसी का फल वह भोगता है ॥१६॥ क्योंकि सैकड़ों करोड़ कल्प व्यतीत होने पर भी बिना भोग किये कर्म कभी नष्ट नहीं होता है। किया हुआ शुभ-अशुभ कर्म अवश्य भोगना पड़ता है ॥१७॥ परमात्मा श्रीकृष्ण ने वेद तथा सामवेद की कौथुमी शाखा में अपने कुल के लोगों से इसी प्रकार कहा है ॥१८॥ समस्त कर्मों के कुछ भोग शेष रहने पर उन्हीं के अनुरूप भारत या अन्यत्र (प्राणी) का जन्म होता है ॥१९॥ क्योंकि कर्म से ही ब्रह्मशाप, कर्म से शुभ आशीर्वाद, कर्म से महालक्ष्मी और कर्म से ही दीनता प्राप्त होती है ॥२०॥ हे पुरन्दर ! अतः करोड़ों जन्मों का किया हुआ संचित कर्म प्राणियों का छाया की भाँति अनुगमन करता है। बिना भोगे वह कभी छोड़ता नहीं है ॥२१॥ काल भेद, देश भेद, और पात्र भेद से कर्मों की न्यूनता या अधिकता हो जाती है ॥२२॥ जिस प्रकार वस्तुओं के दान में, साधारण दिन में वस्तुओं के दान करने से पुण्य भी साधारण ही प्राप्त होता है और दिन के भेद (पर्व समय) होने से वही पुण्य कोटि गुना या असंख्य अथवा उससे भी अधिक हो जाता है ॥२३॥ उसी प्रकार साधारण देश में वस्तुओं के दान करने से साधारण पुण्य और देश भेद होने से कोटि गुना अधिक या उससे भी अधिक असंख्य पुण्य प्राप्त होता है ॥२४॥ इसी तरह साधारण पात्र में वस्तुओं का दान करने से उसके कर्ता को साधारण पुण्य और पात्र भेद (योग्य पात्र) होने पर सौ गुना अथवा उससे भी अधिक असंख्य पुण्य प्राप्त होता है ॥२५॥ किसानों के क्षेत्र भेद (उत्तम खेत) होने से जिस प्रकार सस्य (अनाज) न्यूनाधिक फूलते-फलते हैं, उसीभाँति पात्र भेद होने पर पुण्य फल भी न्यूनाधिक होता है ॥२६॥ साधारण दिन में ब्राह्मण को दान देने पर साधारण फल होता है और अमावास्या तथा सूर्य की

ग्रहणे शशिनः कोटिगुणं च फलमेव च। सूर्यस्य ग्रहणे चापि ततो दशगुणं फलम् ॥२८॥
अक्षयायामक्षयं चाप्यसंख्यफलमुच्यते। एवमन्यत्र पुण्याहे फलाधिक्यं भवेदिह ॥२९॥
यथा दाने तथा स्नाने जपे वै पुण्यकर्मसु। एवं सर्वत्र बोद्धव्यं नराणां कर्मणां फलम् ॥३०॥
सामान्यदेशे दानं च विप्रे समफलं भवेत्। तीर्थे देवगृहे चैव फलं शतगुणं स्मृतम् ॥३१॥
गङ्गायां वै कोटिगुणं क्षेत्रे नारायणेऽव्ययम्। कुरुक्षेत्रे बदर्यां च काश्यां कोटिगुणं तथा ॥३२॥
यथा च वै कोटिगुणं तथा वै विष्णुमन्दिरे। केदारे वै लक्षगुणं हरिद्वारे तथा फलम् ॥३३॥
पुष्करे भास्करक्षेत्रे दशलक्षगुणं फलम्। एवं सर्वत्र बोद्धव्यं फलाधिक्यं क्रमेण च ॥३४॥
सामान्यब्राह्मणे दानं सममेव फलं लभेत्। लक्षं त्रिसंध्यं पूते च पण्डिते च जितेन्द्रिये ॥३५॥
विष्णुमन्त्रोपासके च बुधे कोटिगुणं फलम्। एवं सर्वत्र बोद्धव्यं फलाधिक्यं गुणाधिके ॥३६॥
यथा दण्डेन सूत्रेण शरावेण जलेन च। कुम्भं निर्माति चक्रेण कुम्भकारो मृदा भुवि ॥३७॥
तथैव कर्मसूत्रेण फलं धाता ददाति च। यस्याऽऽज्ञया सृष्टिविधौ तं च नारायणं भज ॥३८॥
स विधाता विधातुश्च पातुः पाता जगत्त्रये। स्रष्टुः स्रष्टा च संहर्तुः संहर्ता कालकालकः ॥३९॥

संक्रान्ति में दान करने से उसका सौ गुना अधिक फल प्राप्त होता है। चातुर्मास्य (चौमासे) और पूर्णिमा में अनन्त फल, चन्द्रग्रहण में कोटि गुना और सूर्यग्रहण में उससे भी दश गुना अधिक फल होता है। अक्षय तृतीया में अक्षय और असंख्य फल का प्राप्त होना कहा है। इसी प्रकार अन्य पुण्य दिवस पर अधिक फल होता है ॥२७-२९॥ जिस प्रकार दान, स्नान एवं जप आदि पुण्य कर्मों में न्यूनाधिक फल प्राप्त होता है, उसी भाँति मनुष्यों के सभी कर्मों का भी सर्वत्र (न्यूनाधिक) फल प्राप्त होता है, ऐसा समझना चाहिए ॥३०॥ जैसे सामान्य देश में ब्राह्मण को दान करने पर सम फल और तीर्थ या देव-मन्दिर में दान करने से उसका सौ गुना अधिक फल होता है ॥३१॥ गंगा जी में कोटि गुना, नारायण क्षेत्र में अव्यय (कभी समाप्त न होने वाला) तथा कुरुक्षेत्र, बदरिकाश्रम और काशी में कोटि गुना फल होता है। जिस प्रकार उपर्युक्त स्थानों में कोटि गुना अधिक फल कहा है उसी प्रकार विष्णु-मन्दिर में भी कोटि गुना फल होता है। केदार और हरिद्वार में लाख गुना, पुष्कर एवं भास्कर क्षेत्र में दश लाख गुना अधिक फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार सर्वत्र क्रमशः फलों की अधिकता जाननी चाहिए ॥३२-३४॥ सामान्य ब्राह्मणों को दान देने से समान फल, तीनों संध्याओं में (संध्यादि द्वारा) पवित्र रहने वाले जितेन्द्रिय पण्डितों को दान देने से लाख गुना और भगवान् विष्णु के मन्त्र की उपासना करने वाले विद्वान् को देने से कोटि गुना फल होता है। इसी प्रकार सर्वत्र गुण की अधिकता में भी फलाधिक्य का होना जानना चाहिए ॥३५-३६॥ जिस प्रकार कुम्हार पृथ्वी पर दण्ड, सूत्र, कसोरा, जल, मिट्टी और चक्र द्वारा घड़े का निर्माण करता है, उसी भाँति सृष्टि-काल में ब्रह्मा जिसकी आज्ञा द्वारा कर्म सूत्र से (प्राणियों को) फल प्रदान करते हैं, उसी नारायण को भजो ॥३७-३८॥ क्योंकि तीनों लोकों में वही विधाता का विधाता, तीनों लोक की रक्षा करने वाले (विष्णु) का रक्षक, सृष्टि करने वाले ब्रह्मा का स्रष्टा, संहार करने वाले (रुद्र) का संहारक और काल का भी काल

महाविपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम् । विपत्तौ तस्य संपत्तिर्भवेदित्याह शङ्करः ॥४०॥
इत्येवमुक्त्वा जीवश्च समालिङ्ग्य सुरेश्वरम् । दत्त्वा शुभाशिषं चेष्टं बोधयामास नारद ॥४१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० लक्ष्म्यु० बृहस्पतिमहेन्द्रसंवादे
कर्मफलनिरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अथ अष्टत्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

हरिं ध्यात्वा हरिर्ब्रह्मञ्जगाम ब्रह्मणः सभाम् । बृहस्पतिं पुरस्कृत्य सर्वैः सुरगणैः सह ॥१॥
शीघ्रं गत्वा ब्रह्मलोकं दृष्ट्वा च कमलोद्भवम् । प्रणेमुर्देवताः सर्वा गुरुणा सह नारद ॥२॥
वृत्तान्तं कथयामास सुराचार्यो विधिं विभुम् । प्रहस्योवाच तच्छ्रुत्वा महेन्द्रं कमलोद्भवः ॥३॥

ब्रह्मोवाच

वत्स मद्वंशजातोऽसि प्रपौत्रो मे विचक्षणः । बृहस्पतेश्च शिष्यस्त्वं सुराणामधिपः स्वयम् ॥४॥
मातामहस्ते दक्षश्च विष्णुभक्तः प्रतापवान् । कुलत्रयं यस्य शुद्धं कथं सोऽहंकृतो भवेत् ॥५॥

है ॥३९॥ अतः संसार में महान् विपत्ति के अवसर पर जो भगवान् मधुसूदन का स्मरण करता है, उसे विपत्ति में भी सम्पत्ति प्राप्त होती है, ऐसा शंकर जी ने कहा है ॥४०॥ हे नारद ! इतना कह कर बृहस्पति ने देवराज इन्द्र का आलिंगन किया और शुभाशीर्वाद देकर उन्हें इष्टज्ञान कराया ॥४१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण में दूसरे प्रकृतिखण्ड के नारदनारायण के संवाद-विषयक महालक्ष्मी के उपाख्यान में बृहस्पति और महेन्द्र के संवाद में कर्मफलनिरूपण नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३७॥

अध्याय ३८

समुद्र-मन्थन-वर्णन

नारायण बोले—इन्द्र ने भगवान् का ध्यान कर के गुरु बृहस्पति को आगे किया और सभी देवों को साथ लेकर ब्रह्मा की सभा में पहुँचे ॥१॥ हे नारद ! शीघ्रता से वहाँ पहुँचने पर समस्त देवगण और गुरु के साथ इन्द्र ने कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा को देखते ही प्रणाम किया ॥२॥ अनन्तर देवों के आचार्य गुरु ने विभु ब्रह्मा से (इन्द्र का) समस्त वृत्तान्त कहा, जिसे सुन कर हँसते हुए ब्रह्मा महेन्द्र से कहने लगे ॥३॥

ब्रह्मा बोले—हे वत्स ! तुम मेरे वंश में उत्पन्न हुए हो, मेरे बुद्धिमान् प्रपौत्र हो, बृहस्पति के शिष्य हो और स्वयं देवों के अधीश्वर हो ॥४॥ तुम्हारे मातामह दक्ष विष्णु के भक्त और प्रतापी हैं। इस प्रकार जिसका तीनों कुल शुद्ध हों, उसे अहंकार किस भाँति से हो सकता है ? ॥५॥ क्योंकि जिसकी माता पतिव्रता,

माता पतिव्रता यस्य पिता शुद्धो जितेन्द्रियः । मातामहो मातुलश्च कथं सोऽहंकृतो भवेत् ॥६॥
जनः पैतृकदोषेण दोषान्मातामहस्य च । गुरोर्दोषान्नीतिदोषैर्हरिद्वेषी भवेद्ध्रुवम् ॥७॥
सर्वान्तरात्मा भगवान्सर्वदेहेष्ववस्थितः । यस्य देहात्स प्रयाति स शवस्तत्क्षणं भवेत् ॥८॥
मनोऽहमिन्द्रियेशश्च ज्ञानरूपो हि शङ्करः । असवः प्रकृतिर्विष्णुर्बुद्धिर्भगवती सती ॥९॥
निद्रादयः शक्तयश्च ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः । आत्मनः प्रतिबिम्बं च जीवो भोगी शरीरभृत् ॥१०॥
आत्मनीशे गते देहात्सर्वे यान्ति ससंभ्रमात् । यथा वर्त्मनि गच्छन्तं नरदेवमिवानुगाः ॥११॥
अहं शिवश्च शेषश्च विष्णुर्धर्मो महान्विराट् । वयं यदंशा भक्ताश्च तत्पुष्पं न्यक्कृतं त्वया ॥१२॥
शिवेन पूजितं पादपद्मं पुष्पेण येन च । तच्च दुर्वाससा दत्तं दैवेनान्यकृतं सुर ॥१३॥
तत्पुष्पं मस्तकं यस्य कृष्णपादाब्जतश्च्युतम् । सर्वेषां वै सुराणां च तत्पूजा पुरतो भवेत् ॥१४॥
दैवेन वञ्चितस्त्वं च दैवं च बलवत्तरम् । भाग्यहीनं जनं मूढं को वा रक्षितुमीश्वरः ॥१५॥
कृष्णं न मन्यते यो हि श्रीनाथं सर्ववन्दितम् । प्रयाति रुष्टा तद्दासी महालक्ष्मीर्विहाय तम् ॥१६॥
शतयज्ञेन या लब्धा दीक्षितेन त्वया पुरा । सा श्रीर्गताऽधुना कोपात्कृष्णनिर्माल्यवर्जनात् ॥१७॥

पिता नाना तथा मामा भी शुद्ध एवं जितेन्द्रिय हों, वह अहंकारी कैसे हो सकता है ॥६॥ पिता सम्बन्धी दोष, मातामह के दोष और गुरु दोष तथा नीति दोष के कारण मनुष्य भगवान् से निश्चित द्वेष करता है ॥७॥ जो सभी के अन्तरात्मा होकर समस्त प्राणियों के देह में अवस्थित रहते हैं, वही जिसके देह से चले जाते हैं, वह उसी समय शव (मुर्दा) रूप हो जाता है ॥८॥ क्योंकि (देह के भीतर) इन्द्रियों का अधीश्वर मन मैं हूँ, शंकर ज्ञान रूप हैं, विष्णु प्राण हैं और भगवती सती प्रकृति बुद्धि रूप हैं एवं निद्रा आदि समस्त शक्तियाँ प्रकृति की कलायें हैं और जीव आत्मा का प्रतिबिम्ब है, जो शरीर को धारण करता है और उसका भरण-पोषण करते हुए अपने कर्मफल (सुख-दुःख का) उपभोग करता है ॥९-१०॥ जिस प्रकार मार्ग में राजा के पीछे उसके सेवक वर्ग चलते हैं, उसी भाँति देहाधीश्वर आत्मा के देह से प्रस्थान करने पर (मन प्राण आदि) सभी उसी क्षण चल देते हैं ॥११॥ इस प्रकार मैं, शिव, शेष, विष्णु, धर्म, महान् और विराट् आदि जिसके अंश और भक्त हैं, उन्हीं के पुण्य को तुमने अपमानित किया है ॥१२॥ हे सुर ! जिस पुष्प द्वारा शिव ने भगवान् के चरण कमल की पूजा की है, वही पुष्प दुर्वासा ने तुम्हें दिया था । किन्तु दुर्दैव (दुर्भाग्य) वश तुमने उसका निरादर कर दिया ॥१३॥ भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल से च्युत (पृथक्) होकर वह पुष्प जिस के मस्तक पर रहता है, उसकी पूजा समस्त देवगणों के समक्ष होती है ॥१४॥ अतः दैव (भाग्य) से तुम ठगे गए हो क्योंकि दैव ही अति बलवान् है और भाग्यहीन एवं मूर्ख प्राणी की रक्षा करने में कौन समर्थ हो सकता है ॥१५॥ अतः लक्ष्मी के नाथ एवं सभी लोगों से वन्दित भगवान् श्रीकृष्ण का जो सम्मान नहीं करता है, उस पर उनकी दासी महालक्ष्मी भी रुष्ट हो जाती हैं और उसे छोड़ कर तत्काल अन्यत्र चली जाती हैं ॥१६॥ दीक्षित होकर तुमने सौ यज्ञ द्वारा जिसे पूर्व समय में प्राप्त किया था, वही (लक्ष्मी) भगवान् श्रीकृष्ण के निर्माल्य के अनादर करने के कारण कोप कर के इस समय चली गयी हैं ॥१७॥ अतः अब इस समय मेरे और बृहस्पति के साथ तुम वैकुण्ठ

अधुना गच्छ वैकुण्ठं मया च गुरुणा सह । निषेव्य तत्र श्रीनाथं श्रियं प्राप्स्यसि तद्वरात् ॥१८॥
इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा सर्वैः सुरगणैः सह । शीघ्रं जगाम वैकुण्ठं यत्र श्रीशस्तया सह ॥१९॥
तत्र गत्वा परं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् । दृष्ट्वा तेजःस्वरूपं च प्रज्वलन्तं स्वतेजसा ॥२०॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डशतकोटिसमप्रभम् । शान्तं चानादिमध्यान्तं लक्ष्मीकान्तमनन्तकम् ॥२१॥
चतुर्भुजैः पार्षदैश्च सरस्वत्या स्तुतं नतम् । भक्त्या चतुर्भिर्वेदैश्च गङ्गया परिषेवितम् ॥२२॥
तं प्रणेमुः सुराः सर्वे मूर्ध्ना ब्रह्मपुरोगमाः । भक्तिनम्राः साश्रुनेत्रास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥२३॥
वृत्तान्तं कथयामास स्वयं ब्रह्मा कृताञ्जलिः । रुरुदुर्देवताः सर्वाः स्वाधिकारच्युताश्च ताः ॥२४॥
स चापश्यत्सुरगणं विपद्ग्रस्तं भयाकुलम् । वस्त्रभूषणशून्यं च वाहनादिविवर्जितम् ॥२५॥
शोभाशून्यं हतश्रीकं परिवारैरनावृतम् । उवाच कातरं दृष्ट्वा विपन्नभयभञ्जनः ॥२६॥

नारायण उवाच

मा भैर्ब्रह्मन्हे सुराश्च भयं किं वो मयि स्थिते । दास्यामि लक्ष्मीमचलां परमैश्वर्यवर्धिनीम् ॥२७॥
किंच मद्वचनं किंचिच्छ्रूयतां समयोचितम् । हितं सत्यं सारभूतं परिणामसुखावहम् ॥२८॥
जनाश्चासंख्यविश्वस्था मदधीनाश्च संततम् । यथा तथाऽहं मद्भक्तैः पराधीनः स्वतन्त्रकः ॥२९॥

चलो। वहाँ श्री के स्वामी भगवान् की सेवा कर के उनके वरदान द्वारा तुम पुनः लक्ष्मी को प्राप्त करो ॥१८॥ इतना कह कर ब्रह्मा समस्त देवों के साथ शीघ्रता से वैकुण्ठ के लिए चल पड़े। वहाँ लक्ष्मी के अधिनायक भगवान् लक्ष्मी जी के साथ विराजमान थे ॥१९॥ वहाँ पहुँचने पर परब्रह्म स्वरूप उन भगवान् सनातन का उन लोगों ने दर्शन किया, जो तेजः-स्वरूप, अपने तेज से देदीप्यमान, ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्नकालीन सैकड़ों करोड़ सूर्य के सभान प्रभा से युक्त, शान्त, आदि, मध्य, और अन्त से रहित, लक्ष्मी के कान्त, अनन्त, चार भुजा वाले पार्षदों और सरस्वती से स्तुत, भक्तिपूर्वक चारों वेदों से भी स्तुत तथा गंगा से सुसेवित हैं ॥२०-२२॥ उपरान्त ब्रह्मा को आगे किए हुए भक्ति-विनम्र और आँखों में आँसू भरे समस्त देव गणों ने शिर से उन्हें प्रणाम किया। पश्चात् उन पुरुषोत्तम की स्तुति करने लगे ॥२३॥ तदनन्तर स्वयं ब्रह्मा ने हाथ जोड़ कर उन्हें समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय अधिकार से च्युत होने के नाते सभी देवगण रुदन कर रहे थे ॥२४॥ भगवान् ने उस समय देवगणों की ओर (सकरुण नेत्रों से) देखा जो विपत्ति से ग्रस्त, भय से व्याकुल, वस्त्र-भूषण, और वाहन आदि से शून्य थे ॥२५॥ शोभाशून्य, हतप्रभ और परिवार आदि से रहित होने के नाते उन्हें कातर देख शरणागत के भयहारी भगवान् ने कहा ॥२६॥

नारायण बोले—हे ब्रह्मन्! हे देवगण! भय मत करो, मेरे रहते तुम्हें भय क्या है। मैं तुम्हें परम ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाली अचल लक्ष्मी प्रदान करूँगा ॥२७॥ किन्तु इसके पूर्व कुछ मेरी बातें सुन लो, जो समयानुसार, हितकारी, सत्य, सारभूत और भविष्य में सुख देने वाली हैं ॥२८॥ जिस प्रकार असंख्य समस्त विश्व में अगणित प्राणी निरन्तर मेरे अधीन रह रहे हैं, उसी भाँति स्वतन्त्र रहते हुए भी मैं अपने भक्तों के अधीन रहता

यो यो रुष्टो हि मद्भक्ते मत्परे हि निरङ्कुशः । तद्गृहेऽहं न तिष्ठामि पद्मया सह निश्चितम् ॥३०॥
दुर्वासाः शंकरांशश्च वैष्णवो मत्परायणः । तच्छापादागतोऽहं च सश्रीको वो गृहादपि ॥३१॥
यत्र शङ्खध्वनिर्नास्ति तुलसी च शिलार्चनम् । न भोजनं च विप्राणां न पद्मा तत्र तिष्ठति ॥३२॥
मद्भक्तानां च मे निन्दा यत्र यत्र भवेत्सुराः । महारुष्टा महालक्ष्मीस्ततो याति पराभवात् ॥३३॥
मद्भक्तिहीनो यो मूढो यो भुङ्क्ते हरिवासरे । मम जन्मदिने चापि याति श्रीस्तद्गृहादपि ॥३४॥
मन्नामविक्रयी यश्च विक्रीणाति स्वकन्याकाम् । यत्रातिथिर्न भुङ्क्ते च मत्प्रिया याति तद्गृहात् ॥३५॥
पापिनां यो गृहं याति शूद्रश्राद्धान्नभोजिनाम् । महारुष्टा ततो याति मन्दिरात्कमलालया ॥३६॥
शूद्राणां शवदाही च भाग्यहीनश्च वाडवः । याति रुष्टा तद्गृहाच्च देवी कमलवासिनी ॥३७॥
शूद्राणां सूपकारो यो ब्राह्मणो वृषवाहकः । तत्तोयपानभीता च कमला याति तद्गृहात् ॥३८॥
विप्रो यवनसेवी च देवलः शूद्रयाजकः । ततोऽपमानभीता च वैष्णवी याति तद्गृहात् ॥३९॥
विश्वासघाती मित्रघ्नो नरघाती कृतघ्नकः । अगम्यां याति यो विप्रो मद्भार्यां याति तद्गृहात् ॥४०॥
अशुद्धहृदयः क्रूरो हिंसको निन्दको द्विजः । ब्राह्मण्यां शूद्रजातश्च याति देवी च तद्गृहात् ॥४१॥

हूँ ॥२९॥ इसलिए यह निश्चित है कि मुझमें तल्लीन रहने वाले मेरे भक्तों पर जो-जो निरंकुश (उद्दण्ड) रुष्ट होते हैं, लक्ष्मीसमेत मैं उनके घर नहीं रहता हूँ ॥३०॥ दुर्वासा शंकर जी के अंश और (सदैव) मेरे ही आश्रय रहने वाले वैष्णव हैं। उन्हीं के शापवश लक्ष्मी समेत हम तुम लोगों के घर से चले आये ॥३१॥ क्योंकि जिस स्थान में शंखध्वनि नहीं होती, तुलसी तथा शालग्राम की अर्चना नहीं होती और ब्राह्मणों को भोजन नहीं कराया जाता है, वहाँ पद्मा (लक्ष्मी) नहीं ठहरती हैं ॥३२॥ हे देववृन्द ! मेरे भक्तों की जहाँ निन्दा होती है, महालक्ष्मी अत्यन्त रुष्ट होकर उस अपमानवश वहाँ से चली जाती हैं ॥३३॥ जो मेरी भक्ति से रहित है और जो मूर्ख हरिवासर (एकादशी में) और मेरे जन्म के दिन (अन्न) भोजन करता है उसके घर से लक्ष्मी चली जाती हैं ॥३४॥ जो हमारे नाम का विक्रय करता है, अपनी कन्या का विक्रय करता है और जिसके यहाँ अतिथियों को भोजन नहीं कराया जाता है, उसके घर से मेरी प्रिया (लक्ष्मी) चली जाती हैं ॥३५॥ शूद्रों के यहाँ श्राद्धान्न भोजनकरने वाले पापियों के घर जो जाता है, उसके घर से महारुष्ट होकर कमला चली जाती हैं ॥३६॥ शूद्रों के शव का दाह करने वाले और भाग्यहीन ब्राह्मण के घर से रुष्ट होकर कमल में निवास करने वाली लक्ष्मी देवी चली जाती हैं ॥३७॥ शूद्रों का भण्डारी तथा बैल पर लादने आदि के कार्य करने वाले ब्राह्मण के घर से उसका जल पीन के भय से कमला चली जाती हैं ॥३८॥ यवनों (मुसलमानों) की नौकरी करने वाले, देवल (मन्दिर के पुजारी) और शूद्रों के यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों के घर से, अपमान के भय से वह वैष्णवी (लक्ष्मी) चली जाती हैं ॥३९॥ विश्वास-घात करने वाले, मित्रहत्या, तथा नरहत्या करने वाले कृतघ्न और अगम्यागामी ब्राह्मण के घर से हमारी भार्या (लक्ष्मी) चली जाती हैं ॥४०॥ अशुद्ध हृदय वाले, क्रूर, हिंसक, निन्दक और ब्राह्मणी में शूद्र से उत्पन्न हुए के घर से वह देवी चली जाती है ॥४१॥

यो विप्रः पुंश्चलीपुत्रो महापापी च तत्पतिः । अवीरान्नं च यो भुङ्क्ते तस्माद्याति जगत्प्रसूः ॥४२॥
तृणं छिनत्ति नखरैस्तैर्वा यो हि लिखेन्महीम् । जिह्मो वा मलवासाश्च सा प्रयाति च तद्गृहात् ॥४३॥
सूर्योदये च द्विर्भोजी दिवाशायी च वाडवः । दिवा मैथुनकारी च तस्माद्याति हरिप्रिया ॥४४॥
आचारहीनो यो विप्रो यश्च शूद्रप्रतिग्रही । अदीक्षितो हि यो मूढस्तस्माल्लोला प्रयाति च ॥४५॥
स्निग्धपादश्च नग्नो वा यः शेते ज्ञानदुर्बलः । शश्वद्धर्माऽतिवाचालो याति वै तद्गृहात्सती ॥४६॥
शिरस्नातश्च तैलेन योऽन्यदङ्गमुपस्पृशेत् । स्वाङ्गे च वादयेद्वाद्यं रमा याति च तद्गृहात् ॥४७॥
व्रतोपवासहीनो यः संध्याहीनोऽशुचिर्द्विजः । विष्णुभक्तिविहीनो यस्तस्माद्याति हरिप्रिया ॥४८॥
ब्राह्मणान्निन्दयेद्यो हि तान्वै द्वेष्टि च संततम् । हिंसाकारी दयाहीनो याति सर्वप्रसूस्ततः ॥४९॥
यत्र यत्र हरेरर्चा हरेरुत्कीर्तनं शुभम् । तत्र तिष्ठति सा देवी कमला सर्वमङ्गला ॥५०॥
यत्र प्रशंसा कृष्णस्य तद्भक्तस्य पितामह । सा च कृष्णप्रिया देवी तत्र तिष्ठति संततम् ॥५१॥
यत्र शङ्खध्वनिः शङ्खः शिला च तुलसीदलम् । तत्सेवा वन्दनं ध्यानं तत्र सा तिष्ठति स्वयम् ॥५२॥
शिवलिङ्गार्चनं यत्र तस्य चोत्कीर्तनं शुभम् । दुर्गार्चनं तद्गुणाश्च तत्र पद्मनिवासिनी ॥५३॥

जो ब्राह्मण व्यभिचारिणी स्त्री का पुत्र है और जो ऐसी स्त्री का पति है, उस महापापी का तथा पतिपुत्रहीना विधवाका अन्न खाने वाले के घर से जगत् की माता लक्ष्मी चली जाती हैं ॥४२॥ नखों से तिनका तोड़ने वाले और भूमि खोदने वाले, कपटी और मलिन वस्त्र वाले के घर से वह चली जाती हैं ॥४३॥ सूर्योदय के समय दो बार भोजन करने वाले, दिन में शयन करने वाले तथा दिन में रति करने वाले ब्राह्मण के घर से हरिप्रिया (लक्ष्मी) चली जाती हैं ॥४४॥ आचारहीन, शूद्र का दान लेने वाले और दीक्षाहीन मूढ़ ब्राह्मण के घर से चपला (लक्ष्मी) चली जाती हैं ॥४५॥ जो ज्ञान की कमी के कारण तेल लगे पैर और नग्न शयन करते हैं तथा निरन्तर धर्म के सम्बन्ध में डींग मारते हैं उनके गृह से सती (लक्ष्मी) चली जाती है ॥४६॥ जो सिर से स्नान करने के अनन्तर दूसरे अंग में तेल लगाता है और जो अपने अंग को बाजे की तरह बजाता है उसके घर से यह रमा चली जाती हैं ॥४७॥ जो ब्राह्मण व्रत-उपवास से रहित, सन्ध्याकर्महीन होने के कारण अपवित्र एवं भगवान् विष्णु की भक्ति से रहित होता है, उसके यहाँ से हरिप्रिया (लक्ष्मी) चली जाती हैं ॥४८॥ जो ब्राह्मण की निन्दा और उनसे सदैव द्वेष रखता है तथा हिंसक एवं निर्दयी है उसके यहाँ से सबको उत्पन्न करने वाली लक्ष्मी चली जाती हैं ॥४९॥

जहाँ कहीं भगवान की अर्चा और उनका शुभ (नाम-) कीर्तन होता है वहाँ सर्वमंगलरूप कमला (लक्ष्मी) निवास करती हैं ॥५०॥ हे पितामह! जहाँ कृष्ण और उनके भक्त की निरन्तर प्रशंसा होती है वहाँ वह कृष्ण-प्रिया (लक्ष्मी देवी) सदैव रहती हैं ॥५१॥ जहाँ शंखध्वनि होती है तथा शंख शिला (शालग्राम) और तुलसी-दल रहता है तथा उनकी सेवा, वन्दना और ध्यान होता है, वहाँ वह स्वयं रहती हैं ॥५२॥ जहाँ शिवलिंग की पूजा, उनका शुभ कीर्तन, दुर्गा जी की पूजा और उनका गुण-गान होता रहता है, वहाँ कमलनिवासिनी (लक्ष्मी)

विप्राणां सेवनं यत्र तेषां वै भोजनं शुभम् । अर्चनं सर्वदेवानां तत्र पद्ममुखी सती ॥५४॥
इत्युक्त्वा च सुरान्सर्वान्रमामाह रमापतिः । क्षीरोदसागरे जन्म लभस्व कलया रमे ॥५५॥
इत्युक्त्वा तां जगन्नाथो ब्रह्माणं पुनराह च । मथित्वा सागरं लक्ष्मीं देवेभ्यो देहि पद्मज ॥५६॥
इत्युक्त्वा कमलाकान्तो देवश्चान्तरधान्मुने । देवाश्चिरेण कालेन ययुः क्षीरोदसागरम् ॥५७॥
मन्थानं मन्दरं कृत्वा कूर्मं कृत्वा च भाजनम् । रज्जुं कृत्वा वासुकिं च ममन्थुश्चैव सागरम् ॥५८॥
धन्वन्तरिं च पीयूषमुच्चैःश्रवसमीप्सितम् । नानारत्नं हस्तिरत्नं प्रापुर्लक्ष्मीं पुरातनीम् ॥५९॥
वनमालां ददौ सा च क्षीरोदशायिने मुने । सर्वेश्वराय रम्याय विष्णवे वैष्णवी सती ॥६०॥
देवैः स्तुता पूजिता च ब्रह्मणा शङ्करेण च । ददौ दृष्टिं सुरगृहे ब्रह्मशापविमोचिकाम् ॥६१॥
प्रापुर्देवाः स्वविषयं दैत्यैर्ग्रस्तं भयङ्करैः । महालक्ष्मीप्रसादेन वरदानेन नारद ॥६२॥
इत्येवं कथितं सर्वं लक्ष्म्युपाख्यानमुत्तमम् । सुखदं सारभूतं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥६३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० लक्ष्म्युपा० समुद्रमथनं
नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

निवास करती हैं ॥५३॥ जहाँ ब्राह्मणों की सेवा होती है, उन्हें पवित्र भोजन कराया जाता है और समस्त देवों की अर्चना होती है, वहाँ वह कमलवदना सती निरन्तर निवास करती हैं ॥५४॥ इस प्रकार रमापति भगवान् विष्णु ने सभी देवों से कहकर पुनः रमा (लक्ष्मी) से कहा—'हे रमे ! अपनी कला (अंश) से क्षीरसागर में जन्मग्रहण करो।' ॥५५॥ लक्ष्मी से इतना कहकर जगन्नाथ ने पुनः ब्रह्मा से कहा—'हे पद्मज (कमल से उत्पन्न होने वाले) ! जाओ; सागर का मन्थन करके देवों को लक्ष्मी प्रदान करो ॥'५६॥ हे मुने ! कमला के कान्त विष्णु इतना कह कर अन्तर्हित हो गये और देवता लोग बहुत दिन के उपरान्त क्षीरसागर पहुँचे ॥५७॥ वहाँ पहुँच कर देवताओं ने मन्दराचल को मथानी, कच्छप (कछुवे) को पात्र और वासुकी नाग को रस्सी बनाकर सागर का मन्थन किया ॥५८॥ अनन्तर उस (सागर) में से धन्वन्तरि वैद्य, अमृत, मनमोहक उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, अनेक भाँति के रत्न, गजराज (ऐरावत) और पुरातन लक्ष्मी की प्राप्ति हुई ॥५९॥ हे मुने ! अनन्तर उस प्रतिव्रता वैष्णवी (लक्ष्मी) ने भगवान् विष्णु को वनमाला (जयमाल रूप में) अर्पित की, जो क्षीरशायी, समस्त के ईश्वर और अति रमणीक हैं ॥६०॥ देवों ने लक्ष्मी की स्तुति की। ब्रह्मा और शिव ने उनकी पूजा की। अनन्तर देवों के घर में उसने ब्रह्मशाप से मुक्त करने वाली अपनी कृपादृष्टि प्रदान की ॥६१॥ हे नारद ! इस प्रकार महालक्ष्मी के प्रसाद से वरदान द्वारा देवों ने भयंकर दैत्यों से आक्रान्त अपने विषयों (गृहादि वस्तुओं) को पुनः प्राप्त किया ॥६२॥ इस भाँति मैंने लक्ष्मी का समस्त परमोत्तम आख्यान तुम्हें सुना दिया; जो सुखद और सारभूत है। अब और क्या सुनना चाहते हो ॥६३॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायणसंवादविषयक लक्ष्मी के
उपाख्यान में समुद्रमथन नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

हरेरुत्कीर्तनं भद्रं श्रुतं तज्ज्ञानमुत्तमम् । ईप्सितं लक्ष्म्युपाख्यानं ध्यानं स्तोत्रादिकं वद ॥१॥
हरिणा पूजिता पूर्वं ततो ब्रह्मादिभिस्तथा । शक्रेण भ्रष्टराज्येन सार्धं सुरगणेन च ॥२॥
ध्यानेन पूजिता केन विधिना केन वा पुरा । केन स्तुता वा स्तोत्रेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥३॥

नारायण उवाच

स्नात्वा तीर्थे पुरा शक्रो धृत्वा धौते च वाससी । घटं संस्थाप्य क्षीरोदे देवषट्कमपूजयत् ॥४॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् । एतान्भक्त्या समभ्यर्च्य पुष्पगन्धादिभिस्तथा ॥५॥
तत्राऽऽवाह्य महालक्ष्मीं परमैश्वर्यरूपिणीम् । पूजां चकार देवेशो ब्रह्मणा च पुरोधसा ॥६॥
पुरःस्थितेषु मुनिषु ब्राह्मणेषु गुरौ तथा । देवादिषु च देवेशे ज्ञानानन्दे शिवे मुने ॥७॥
पारिजातस्य पुष्पं च गृहीत्वा चन्दनोक्षितम् । ध्यात्वा देवीं महालक्ष्मीं पूजयामास नारद ॥८॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं यदुक्तं ब्रह्मणे पुरा । ध्यानेन हरिणा तेन तन्निबोध वदामि ते ॥९॥
सहस्रदलपद्मस्य कर्णिकावासिनीं पराम् । शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभाजुष्टकरां वराम् ॥१०॥

अध्याय ३९

लक्ष्मी का पूजा-विधान

नारद बोले—मैंने भगवान् का कल्याणकारी (नामादि) कीर्तन, उनका परमोत्तम ज्ञान और लक्ष्मी का अभिलषित उपाख्यान भी सुन लिया, अब उनके ध्यान और स्तोत्र आदि कहने की कृपा करें ॥१॥ सर्वप्रथम भगवान् ने लक्ष्मी की पूजा की, अनन्तर ब्रह्मा आदि ने और राज्यच्युत इन्द्र ने देवों समेत उनकी अर्चना की। मैं यही जानना चाहता हूँ कि पूर्व काल में उन सबों ने किस ध्यान और किस विधान से उनकी पूजा की तथा किस स्तोत्र से उनकी स्तुति की, वह मुझे बताने की कृपा करें ॥२-३॥

नारायण बोले—पहले समय में इन्द्र ने एक बार तीर्थ-स्नान किया और दो धुले वस्त्र पहन कर क्षीरसागर में कलश-स्थापनपूर्वक छः देवों की पूजा की। गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती—इन छहों देवों की भक्तिपूर्वक पुष्प-गन्धादि द्वारा अर्चना कर के उसी स्थापित घट में परम ऐश्वर्यरूपिणी महालक्ष्मी का आवाहन किया और ब्रह्मा तथा बृहस्पति के साथ उन्होंने उनकी पूजा की ॥४-६॥ हे मुने! उनके सामने मुनिगण, ब्राह्मण वृन्द, गुरु बृहस्पति, देवगण और देवाधीश्वर एवं ज्ञानानन्द शिव उस समय विद्यमान थे ॥७॥ हे नारद! चन्दन-चर्चित पारिजात का पुष्प लेकर उन्होंने महालक्ष्मी देवी का ध्यानपूर्वक पूजन किया ॥८॥ पूर्व काल में भगवान् ने ब्रह्मा को जो सामवेदोक्त ध्यान बताया था, वह तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥९॥

सहस्र दल वाले कमल पुष्प की कर्णिका में निवास करने वाली, श्रेष्ठ, शारदीय पूर्णिमा के करोड़ों चन्द्रमा की कान्ति से सुशोभित, परमोत्तम, अपने तेज द्वारा देदीप्यमान, देखने में सुखकर, मनोहारिणी, अत्यन्त तपाये हुए

स्वतेजसा प्रज्वलन्तीं सुखदृश्यां मनोहराम् । प्रतप्तकाञ्चननिभां शोभां मूर्तिमतीं सतीम् ॥११॥
रत्नभूषणभूषाढ्यां शोभितां पीतवाससा । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रम्यां सुस्थिरयौवनाम् ॥१२॥
सर्वसंपत्प्रदात्रीं च महालक्ष्मीं भजे शुभाम् । ध्यानेनानेन तां ध्यात्वा चोपहारैः सुसंयुतः ॥१३॥
संपूज्य ब्रह्मवाक्येन चोपहाराणि षोडश । ददौ भक्त्या विधानेन प्रत्येकं[1] मन्त्रपूर्वकम् ॥१४॥
प्रशंस्यानि प्रहृष्टानि दुर्लभानि वराणि च । अमूल्यरत्नखचितं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥
आसनं च विचित्रं च महालक्ष्मि प्रगृह्यताम् ॥१५॥
शुद्धं गङ्गोदकमिदं सर्ववन्दितमीप्सितम् । पापेध्मवह्निरूपं च गृह्यतां कमलालये ॥१६॥
पुष्पचन्दनदूर्वादिसंयुतं जाह्नवीजलम् । शङ्खगर्भस्थितं शुद्धं गृह्यतां पद्मवासिनि ॥१७॥
सुगन्धियुक्तं तैलं च सुगन्धामलकीजलम् । देहसौन्दर्यबीजं च गृह्यतां श्रीहरिप्रिये ॥१८॥
वृक्षनिर्यासरूपं च गन्धद्रव्यादिसंयुतम् । कृष्णकान्ते पवित्रो वै धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥१९॥
मलयाचलसंभूतं वृक्षसारं मनोहरम् । सुगन्धियुक्तं सुखदं चन्दनं देवि गृह्यताम् ॥२०॥
जगच्चक्षुःस्वरूपं च ध्वान्तप्रध्वंसकारणम् । प्रदीपं शुद्धरूपं च गृह्यतां परमेश्वरि ॥२१॥
नानोपहाररूपं च नानारससमन्वितम् । नानास्वादुकरं चैव नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥२२॥

सुवर्ण की भाँति शोभा धारण करने वाली, मूर्तिमती सती, रत्नों के भूषणों से विभूषित, पीताम्बर से सुशोभित, मन्द मुसुकान समेत प्रसन्न मुख, रम्य, अत्यन्त स्थिर यौवन वाली और समस्त सम्पत्ति प्रदान करने वाली शुभ महालक्ष्मी का मैं भजन कर रहा हूँ। इस ध्यान द्वारा उनका ध्यान करने के उपरान्त उपहारों से युक्त इन्द्र ने ब्रह्मवाक्य द्वारा सम्यक् पूजन करके १६ उपहारों में से प्रत्येक को भक्ति और विधान के साथ मंत्रपूर्वक प्रदान किया ॥१०-१४॥ हे महालक्ष्मि! प्रशस्त, प्रसन्न करने वाले, दुर्लभ और श्रेष्ठ उपहारों में से सर्वप्रथम अमूल्य रत्नों से खचित और विश्वकर्मा के बनाये इस विचित्र आसन को मैं अर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो ॥१५॥ हे कमलगृहनिवासिनि! यह शुद्ध गंगोदक अर्पित कर रहा हूँ, जो सब से वन्दित, अभीष्ट तथा पापरूपी काष्ठ को जलाने के लिए अग्नि रूप है, ग्रहण करो॥१६॥ हे पद्मवासिनि! पुष्प, चन्दन और दूर्वादि संयुत यह गंगा जल, जो शंख के गर्भ में स्थित एवं शुद्ध है, ग्रहण करो॥१७॥ हे श्रीहरि की प्रिये! सुगन्धित तैल, सुगन्धपूर्ण आँवला मिश्रित जल, जो देह की सुन्दरता का मूल कारण है, ग्रहण करो॥१८॥ हे कृष्णकान्ते! वृक्ष के निर्यात (गोंद) रूप और गन्ध द्रव्य मिश्रित इस पवित्र धूप को ग्रहण करो॥१९॥ हे देवि! यह चन्दन ग्रहण करो, जो मलयाचल पर उत्पन्न, वृक्ष का सार भाग, मनोहर, सुगन्धित एवं सुखद है॥२०॥ हे परमेश्वरि! इस शुद्ध रूप वाले दीपक को ग्रहण करो, जो समस्त संसार का नेत्रस्वरूप और अंधकार के नाश का कारण है॥२१॥ अनेक भाँति के स्वाद देने वाले इस नैवेद्य को ग्रहण करो, जो नाना उपहार रूप और अनेक रस से युक्त है॥२२॥ ब्रह्मस्वरूप इस मधुर अन्न को ग्रहण करो, जो प्राण

---

१. क. ०कं भक्तिपू० ।

अन्नं ब्रह्मस्वरूपं च प्राणरक्षणकारणम् । तुष्टिदं पुष्टिदं चान्नं मधुरं प्रतिगृह्यताम् ॥२३॥
शाल्यक्षतसुपक्वं च शर्करागव्यसंयुतम् । सुस्वादु रम्यं पद्मे च परमान्नं प्रगृह्यताम् ॥२४॥
शर्करागव्यपक्वं च सुस्वादु सुमनोहरम् । मया निवेदितं लक्ष्मि स्वस्तिकं प्रतिगृह्यताम् ॥२५॥
नानाविधानि रम्याणि पक्वानि च फलानि तु । स्वादुरस्यानि कमले गृह्यतां फलदानि च ॥२६॥
सुरभिस्तनसंभूतं सुस्वादु सुमनोहरम् । मर्त्यामृतं च गव्यं वै गृह्यतामच्युतप्रिये ॥२७॥
सुस्वादुरससंयुक्तमिक्षुवृक्षरसोद्भवम् । अग्निपक्वमपक्वं वा गुडं वै देवि गृह्यताम् ॥२८॥
यवगोधूमसस्यानां चूर्णरेणुसमुद्भवम् । सुपक्वगुडगव्याक्तं मिष्टान्नं देवि गृह्यताम् ॥२९॥
सस्यचूर्णोद्भवं पक्वं स्वस्तिकादिसमन्वितम् । मया निवेदितं देवि पिष्टकं प्रतिगृह्यताम् ॥३०॥
पार्थिवं वृक्षभेदं च विविधैर्द्रव्यकारणम् । सुस्वादुरससंयुक्तमैक्षवं प्रतिगृह्यताम् ॥३१॥
शीतवायुप्रदं चैव दाहे च सुखदं परम् । कमले गृह्यतां चेदं व्यजनं श्वेतचामरम् ॥३२॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । जिह्वाजाड्यच्छेदकरं ताम्बूलं देवि गृह्यताम् ॥३३॥
सुवासितं शीतलं च पिपासानाशकारणम् । जगज्जीवनरूपं च जीवनं देवि गृह्यताम् ॥३४॥
देहसौन्दर्यबीजं च सदा शोभाविवर्धनम् । कार्पासजं च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम् ॥३५॥

रक्षा का कारण और तुष्टि-पुष्टि प्रदान करता है ॥२३॥ हे पद्मे ! इस सुस्वादपूर्ण परमान्न (खीर) को ग्रहण करो जो साठी धान के चावल का उत्तम ढंग से पकाया गया है और चीनी तथा गाय के घी से युक्त है ॥२४॥ हे लक्ष्मि ! मैंने यह स्वस्तिक (कल्याणप्रद सेवईं) भोजन तुम्हें अर्पित किया है, उसे ग्रहण करो, जो शक्कर, तथा गाय के दुग्ध में बना अत्यन्त स्वादिष्ठ और मनोहारी है ॥२५॥ हे कमले ! अनेक भाँति के पके, सुन्दर एवं स्वादुरस-पूर्ण फल तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ, इसे स्वीकार करो ॥२६॥ हे अच्युतप्रिये ! यह गौ का दूध अर्पित कर रहा हूँ, ग्रहण करो, जो गौ के स्तन से निकला, अतिस्वादपूर्ण, मनोहर और मर्त्यलोक में अमृत रूप है ॥२७॥ हे देवि ! अग्नि में पकाये अथवा बिना पकाये इस गुड़ को ग्रहण करो ! जो अति स्वादिष्ठ रस-युक्त और ऊख के रस से बना है ॥२८॥ हे देवि ! जवा, गेहूँ तथा चावल के चूर्ण (आटे) से बना और गुड़ तथा गो-घृत में भली भाँति पका है, अतः इस मिष्टान्न को ग्रहण करो ॥२९॥ हे देवि ! चावल के चूर्ण (आटे) से पका कर बनाये हुए तथा स्वस्तिक आदि से युक्त इस पूये को स्वीकार करो ॥३०॥ इस विशेष प्रकार के वृक्ष (गन्ने) को स्वीकार करो जो विविध प्रकार की मिठाइयों का (मूल) कारण और अत्यन्त स्वादिष्ठ रस से युक्त है ॥३१॥ हे कमले ! इस श्वेत चामर वाले व्यजन (पंखे) को ग्रहण करो, जो दाह के समय शीतल वायुप्रद और परम सुखदायक है ॥३२॥ हे देवि ! इस श्रेष्ठ और सुरम्य ताम्बूल (पान) को ग्रहण करो, जो कपूर आदि से सुवासित तथा जिह्वा की जड़ता का नाशक है ॥३३॥ हे देवि ! सुवासित (सुगन्धित), शीतल, पिपासा (प्यास) के नाशक और सारे संसार के जीवन रूप इस जल को स्वीकार करो ॥३४॥ हे देवि ! कपास और कीड़े से उत्पन्न यह वस्त्र ग्रहण करो, जो देह की सुन्दरता का कारण तथा सदैव शोभावर्द्धक है ॥३५॥

रत्नस्वर्णविकारं च देहसौख्यविवर्धनम्। शोभाधारं[1] श्रीकरं च भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥३६॥
नानाकुसुमनिर्माणं बहुशोभाप्रदं परम्। सुरलोकप्रियं शुद्धं माल्यं देवि प्रगृह्यताम् ॥३७॥
शुद्धिदं शुद्धिरूपं च सर्वमङ्गलमङ्गलम्। गन्धवस्तूद्भवं रम्यं गन्धं देवि प्रगृह्यताम् ॥३८॥
पुण्यतीर्थोदकं चैव विशुद्धं शुद्धिदं सदा। गृह्यतां कृष्णकान्ते त्वं रम्यमाचमनीयकम् ॥३९॥
रत्नसारैः संग्रथितं पुष्पचन्दनसंयुतम्। रत्नभूषणभूषाढ्यं सुतल्पं प्रतिगृह्यताम् ॥४०॥
यद्यद्द्रव्यमपूर्वं च पृथिव्यामतिदुर्लभम्। देवभूपाढ्यभोग्यं च तद्द्रव्यं देवि गृह्यताम् ॥४१॥
द्रव्याण्येतानि दत्त्वा वै मूलेन च पुरंदरः। मूलं जजाप भक्त्या च दशलक्षं विधानतः ॥४२॥
जपेन दशलक्षेण मन्त्रसिद्धिर्बभूव ह। मन्त्रश्च ब्रह्मणा दत्तः कल्पवृक्षश्च सर्वदा ॥४३॥
लक्ष्मीर्माया कामवाणी ततः कमलवासिनी। स्वाहान्तो वैदिको मन्त्रराजोऽयं द्वादशाक्षरः ॥४४॥
श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा। कुबेरोऽनेन मन्त्रेण सर्वैश्वर्यमवाप्तवान् ॥४५॥
राजराजेश्वरो दक्षः सावर्णिर्मनुरेव च। मङ्गलोऽनेन मन्त्रेण सप्तद्वीपवतीपतिः ॥४६॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ केदारो नृप एव च। एते च सिद्धा राजेन्द्रा मन्त्रेणानेन नारद ॥४७॥
सिद्धे मन्त्रे महालक्ष्मीर्ददौ शक्राय दर्शनम्। रत्नेन्द्रव्यूहखचितविमानस्था वरप्रदा ॥४८॥

रत्न और सुवर्ण से बनाये गये, शरीरसौख्यवर्द्धक, शोभा के आधार और श्रीप्रद इस भूषण को ग्रहण करो ॥३६॥ हे देवि! अनेक भाँति के पुष्पों से विभूषित, बहुशोभाकारी, देव-समूहों की प्रिय एवं शुद्ध इस माला को स्वीकार करो ॥३७॥ हे देवि! शुद्धिप्रद, शुद्धिरूप, सभी मंगलों के मंगल, सुगन्धित वस्तु से उत्पन्न और रम्य इस गन्ध को स्वीकार करो ॥३८॥ हे कृष्णकान्ते! इस आचमन-जल को स्वीकार करो, जो पुण्यतीर्थ का जल, विशुद्ध, सदा शुद्धिप्रद और रमणीक है ॥३९॥ रत्नों के सार भाग से सिली हुई, पुष्प चन्दन युक्त एवं रत्नों के भूषणों से सुशोभित, इस सुन्दर शय्या को ग्रहण करो ॥४०॥ हे देवि! इस धरातल पर जो-जो अपूर्व-अत्यन्त दुर्लभ तथा देवताओं और राजाओं के उपभोग के योग्य द्रव्य है उसे स्वीकार करो ॥४१॥ इस भाँति इन्द्र ने मूलमंत्र द्वारा इन वस्तुओं को उन्हें समर्पित करके भक्तिपूर्वक सविधान मूलमंत्र का दश लाख जप किया ॥४२॥ दशलाख जप करने से मंत्र की सिद्धि हो गई। इस प्रकार ब्रह्मा ने मन्त्र और कल्पवृक्ष सर्वदा के लिए दे दिया ॥४३॥ लक्ष्मी, माया, कामवाणी, अनन्तर कमलवासिनी शब्द के अन्त में स्वाहा शब्द लगा देने से यह वैदिक द्वादशाक्षर मंत्रराज हो जाता है—'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा'। इसी मंत्र द्वारा कुबेर ने समस्त ऐश्वर्य प्राप्त किया तथा राजराजेश्वर, हो गये, दक्ष सावर्णि भी मनु हो गये और मंगल सातों द्वीप वाली पृथ्वी के अधिपति हुए। हे नारद! प्रियव्रत, उत्तानपाद और केदारनाथ आदि ये सभी राजेन्द्र इसी मंत्र द्वारा सिद्ध हुए हैं। उपरान्त मंत्र के सिद्ध होने पर महालक्ष्मी ने इन्द्र को साक्षात् दर्शन दिया, जो चारों ओर रत्नेन्द्र समूहों से खचित विमान पर स्थित, वर देनेवाली और अपनी कान्ति से इस सातों द्वीपवाली पृथ्वी को आच्छादित किए थी तथा श्वेत चम्पा पुष्प के समान शरीर की कान्ति एवं रत्नों के भूषणों

---

१. ख. ०धानं।

सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं छादयन्तीं त्विषा च सा। श्वेतचम्पकवर्णाभा रत्नभूषणभूषिता ॥४९॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकारिका। बिभ्रती रत्नमालां च कोटिचन्द्रसमप्रभा ॥५०॥
दृष्ट्वा जगत्प्रसूं शान्तां तां तुष्टाव पुरंदरः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रः कृताञ्जलिः ॥५१॥
ब्रह्मणा च प्रदत्तेन स्तोत्रराजेन संयतः। सर्वाभीष्टप्रदेनैव वैदिकेनैव तत्र च ॥५२॥

इन्द्र उवाच

ॐ नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः। कृष्णप्रियायै सारायै पद्मायै च नमो नमः ॥५३॥
पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः। पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः ॥५४॥
सर्वसंपत्स्वरूपायै सर्वदात्र्यै नमो नमः। सुखदायै मोक्षदायै सिद्धिदायै नमो नमः ॥५५॥
हरिभक्तिप्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै नमो नमः। कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमो नमः ॥५६॥
कृष्णशोभास्वरूपायै रत्नाढ्यायै नमो नमः। संपत्त्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः ॥५७॥
सस्याधिष्ठातृदेव्यै च सस्यलक्ष्म्यै नमो नमः। नमो बुद्धिस्वरूपायै[1] बुद्धिदायै[2] नमो नमः ॥५८॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्लक्ष्मीः क्षीरोदसागरे। स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये ॥५९॥

से सुशोभित, मन्दहास करती हुई प्रसन्न मुख, भक्तों पर अनुग्रह करने वाली और रत्नों की माला धारण किए करोड़ों चन्द्रमा के समान कान्तिपूर्ण थी। इस प्रकार शान्त स्वरूपवाली उस जगज्जननी को देख कर समस्त अंगों में रोमांचित, आँखों में आँसू भरे एवं हाथ जोड़े इन्द्र ने ब्रह्मा के द्वारा प्रदत्त सकलकामनादायक वैदिक स्तोत्रराज द्वारा स्तुति करना आरम्भ किया ॥४४-५२॥

इन्द्र बोले—कमलवासिनी को नमस्कार है, नारायणी को बार-बार नमस्कार है। भगवान् कृष्ण की प्रिया तत्त्वस्वरूप पद्मा को, बार-बार नमस्कार है ॥५३॥ कमल के पत्ते के समान नेत्रवाली और कमलमुखी को बार-बार नमस्कार है। कमलासनवाली तथा उस कमलनयनी वैष्णवी को बार-बार नमस्कार है ॥५४॥ समस्त सम्पत्तिस्वरूप और सभी कुछ देने वाली को नमस्कार है। सुखप्रद, मोक्षदायिनी तथा सिद्धि देने वाली को बार-बार नमस्कार है ॥५५॥ भगवान् की भक्ति देने वाली एवं हर्षदायिनी को नमस्कार है। भगवान् कृष्ण के वक्षःस्थल पर रहने वाली एवं कृष्णस्वामिनी को नमस्कार है ॥५६॥ भगवान् कृष्ण की शोभा-स्वरूप और रत्नभूषिता को नमस्कार है। सम्पत्ति की अधिष्ठात्री महादेवी को नमस्कार है ॥५७॥ फले-फले क्षेत्रों की अधिष्ठात्री देवी तथा सस्य-लक्ष्मी को नमस्कार है। बुद्धि स्वरूपवाली तथा बुद्धिदायिनी को नमस्कार है ॥५८॥ वैकुण्ठ में तुम महालक्ष्मी हो एवं क्षीरसागर में लक्ष्मी, इन्द्र के घर में स्वर्गलक्ष्मी, राजघरों में राजलक्ष्मी, गृहस्थों के घर में गृहलक्ष्मी, उनके घर की देवता, गौओं की माता सुरभि, यज्ञ-पत्नी दक्षिणा, देवमाता अदिति और कमलगृह में

---

१. क. वृद्धि०। २. वृद्धि०।

गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता। सुरभिः सा गवां माता दक्षिणा यज्ञकामिनी ॥६०॥
अदितिर्देवमाता त्वं कमला कमलालये। स्वाहा त्वं च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता ॥६१॥
त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुंधरा। शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा ॥६२॥
क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा[1] च शुभानना। परमार्थप्रदा त्वं च हरिदास्यप्रदा परा ॥६३॥
यया विना जगत्सर्वं भस्मीभूतमसारकम्। जीवन्मृतं च विश्वं च शवतुल्यं यया विना ॥६४॥
सर्वेषां च परा त्वं हि सर्वबान्धवरूपिणी। यया विना न संभाष्यो बान्धवैर्बान्धवः सदा ॥६५॥
त्वया हीनो बन्धुहीनस्त्वया युक्तः सबान्धवः। धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं च कारणरूपिणी ॥६६॥
स्तनंधयानां त्वं माता शिशूनां शैशवे यथा। तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषां सर्वविश्वतः ॥६७॥
त्यक्तस्तनो मातृहीनः स चेज्जीवति दैवतः। त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम् ॥६८॥
सुप्रसन्नस्वरूपा त्वं मे प्रसन्ना भवाम्बिके। वैरिग्रस्तं च विषयं देहि मह्यं सनातनि ॥६९॥
वयं यावत्त्वया हीना बन्धुहीनाश्च भिक्षुकाः। सर्वसंपद्विहीनाश्च तावदेव हरिप्रिये ॥७०॥
राज्यं देहि श्रियं देहि बलं देहि सुरेश्वरि। कीर्तिं देहि धनं देहि पुत्रान्मह्यं च देहि वै ॥७१॥
कामं देहि मतिं देहि भोगान्देहि हरिप्रिये। ज्ञानं देहि च धर्मं च सर्वसौभाग्यमीप्सितम् ॥७२॥

तुम कमला हो। तुम हवि प्रदान करते समय स्वाहा एवं कव्य दान में स्वधा हो ॥५९-६१॥ तुम ही विष्णुस्वरूप और समस्त की आधार वसुन्धरा हो। शुद्ध सत्त्ववाली तुम नारायणपरायण रहती हो। तुम क्रोध, हिंसा से रहित, वरदायिनी, शुभमुखी, परमार्थ देने वाली एवं हरिदास्य देने वाली सर्वश्रेष्ठ हो ॥६२-६३॥ जिसके बिना समस्त संसार भस्मीभूत और सारहीन मालूम होता है, तथा जिसके बिना यह समस्त विश्व जीवित रहते हुए भी मृतक एवं शव के समान हो जाता है ॥६४॥ वही तुम सब में श्रेष्ठ और समस्तबान्धव रूप हो। तुम्हारे बिना भाई-भाई में भी सदा बोल-चाल नहीं होता है ॥६५॥ एवं तुमसे हीन रहने पर (मनुष्य) बन्धुहीन और तुमसे युक्त रहने पर बन्धुओं से युक्त रहता है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की तुम कारण रूप हो ॥६६॥ शैशवावस्था में दूध पीने वाले बच्चों की माता की भाँति तुम सारे विश्व की सर्वदा माता हो ॥६७॥ क्योंकि माता का स्तन छूट जाये, मातृहीन हो जाये, तो भी कदाचित् दैवयोग से जीवित रह सकता है किन्तु तुमसे रहित होकर कोई भी मनुष्य निश्चित ही जीवित नहीं रह सकता ॥६८॥ अतः हे अम्बिके! अत्यन्त प्रसन्नस्वरूप होने के कारण तुम मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। हे सनातनि! वैरियों के अधीन हुए मेरे विषयों (वस्तुओं) को मुझे पुनः दिलाने की कृपा करो ॥६९॥ हे हरिप्रिये! हम लोग जब तक तुमसे रहित हैं तब तक बन्धुओं से भी हीन, भिक्षुक तथा सभी सम्पत्तियों से हीन हैं ॥७०॥ अतः हे सुरेश्वरि! हमें राज्यसमेत श्री और बल प्रदान करो। कीर्ति और धन समेत मुझे अनेक पुत्र भी प्रदान करो ॥७१॥ हे हरिप्रिये! हमारी कामनाएँ पूरी करो। हमें मति (बुद्धि) प्रदान करो। भोगों को दो तथा ज्ञान-धर्म के साथ अभिलषित समस्त सौभाग्य प्रदान करो ॥७२॥

---

१. क. ०दा शारदा शुभा।

सर्वाधिकारमेवं वै प्रभावं च प्रतापकम्। जयं पराक्रमं [1]युद्धे परमैश्वर्यमेव च ॥७३॥
इत्युक्त्वा तु महेन्द्रश्च सर्वैः सुरगणैः सह। ननाम साश्रुनेत्रोऽयं मूर्ध्ना चैव पुनः पुनः ॥७४॥
ब्रह्मा च शङ्करश्चैव शेषो धर्मश्च केशवः। सर्वे चक्रुः परीहारं सुरार्थे च पुनः पुनः ॥७५॥
देवेभ्यश्च वरं दत्त्वा पुष्पमालां मनोहराम्। केशवाय ददौ लक्ष्मीः संतुष्टा सुरसंसदि ॥७६॥
ययुर्देवाश्च संतुष्टाः स्वं स्वं स्थानं च नारद। देवी ययौ हरेः क्रोडं हृष्टा क्षीरोदशायिनः ॥७७॥
ययतुस्तौ स्वस्वगृहं ब्रह्मेशानौ च नारद। दत्त्वा शुभाशिषं तौ च देवेभ्यः प्रीतिपूर्वकम् ॥७८॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। कुबेरतुल्यः स भवेद्राजराजेश्वरो महान् ॥७९॥
सिद्धस्तोत्रं[2] यदि पठेत्सोऽपि कल्पतरुर्नरः। पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥८०॥
सिद्धं स्तोत्रं यदि पठेन्मासमेकं च संयतः। महासुखी च राजेन्द्रो भविष्यति न संशयः ॥८१॥

नारद उवाच

पुष्पं दुर्वाससा दत्तमस्ति वै यस्य मस्तके। तस्य सर्वा पुरः पूजेत्युक्तं पूर्वं त्वया प्रभो ॥८२॥

इसी प्रकार समस्त अधिकार, प्रभाव, प्रताप, युद्ध में जय-पराक्रम और परमैश्वर्य हमें प्रदान करो ॥७३॥ इतना कह कर महेन्द्र ने समस्त देवों समेत आँखों में आँसू भरे शिर से उन्हें बार-बार नमस्कार किया ॥७४॥ ब्रह्मा, शिव, शेष, धर्मराज और केशव आदि सभी ने देवों के हितार्थ बार-बार अपराध क्षमा करने के लिए आग्रह किया ॥७५॥ उपरान्त उस देव के हितार्थ लक्ष्मी ने प्रसन्न होकर देवताओं को वरदान और भगवान् केशव को मनोहर पुष्पमाला प्रदान की ॥७६॥ हे नारद ! अनन्तर देवता लोग उसी समय हर्षित होकर अपने-अपने स्थान को चले गये और उसी समय से देवी (लक्ष्मी) भी क्षीरसागरशायी भगवान् की गोद में सन्तुष्ट होकर निवास करने लगीं ॥७७॥ हे नारद ब्रह्मा और शिव भी देवों को प्रीतिपूर्वक शुभ आशिष प्रदान कर अपने-अपने स्थान को चले गये ॥७८॥ जो मनुष्य महापुण्यस्वरूप इस स्तोत्र का पाठ तीनों संध्याओं में करेगा, वह कुबेर की भाँति महान् राजराजेश्वर होगा ॥७९॥ यदि वह पुरुष सिद्ध-स्तोत्र का पाठ करेगा, तो कल्पवृक्ष (की भाँति सर्वश्रेष्ठ) होगा। इसका पाँच लाख जप करने से मनुष्यों को स्तोत्र-सिद्धि हो जाती है ॥८०॥ यदि एक मास तक इस सिद्ध स्तोत्र का पाठ संयमपूर्वक करेगा तो वह महासुखी राजेन्द्र होगा, इसमें संशय नहीं ॥८१॥

नारद बोले—हे प्रभो ! आपने यह पहले ही कहा है कि दुर्वासा का दिया हुआ वह पुष्प जिसके मस्तक पर विराजमान रहेगा, उसकी सब के सामने पहले पूजा होगी फिर वही पुष्प गजराज के मस्तक पर (इन्द्र ने) रखा था, जिससे गणेश जी का (गजानन रूप में) जन्म हुआ। अनन्तर वह गजेन्द्र मत्त होकर अन्य घोर वन में चला गया था। हे मुने! पूर्व काल में शनि के दृष्टिपात करने पर गणपति का मस्तक कट गया था, जिससे

१क. बुद्धि प० । २क. स्तोत्रं यदि भवेत्सो० ।

तदेव स्थापितं पुष्पं गजेन्द्रस्यैव मस्तके । यतो जन्म गणेशस्य स च मत्तो वनं गतः ॥८३॥
मूर्ध्नि च्छिन्ने गणपतेः शनैर्दृष्ट्वा पुरा मुने । तत्स्कन्धे योजयामास हस्तिमस्तं हरिः स्वयम् ॥८४॥
अधुनोक्तं देवषट्कं संपूज्य च पुरंदरः । पूजयामास लक्ष्मीं च क्षीरोदे च सुरैः सह ॥८५॥
अहो पुराणवक्तॄणां दुर्बोधं वचनं नृणाम् । सुव्यक्तमस्य सिद्धान्तं वद वेदविदां वर ॥८६॥

नारायण उवाच

यदा शशाप शक्रं च दुर्वासा मुनिपुंगवः । तदा नास्त्येव तज्जन्म पूजाकाले बभूव सः ॥८७॥
सुचिरं दुःखिता देवा बभ्रमुर्ब्रह्मशापतः । पश्चात्प्रापुश्च तां लक्ष्मीं वरेण च हरेर्मुने ॥८८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० लक्ष्म्युपा० लक्ष्मीपूजाविधानं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायण महाभाग सदृशश्चैव त्वया प्रभो । रूपेण च गुणैश्चैव यशसा तेजसा त्विषा ॥१॥
त्वमेव ज्ञानिनां श्रेष्ठः सिद्धानां योगिनां तथा । तपस्विनां मुनीनां च परो वेदविदां तथा ॥२॥
महालक्ष्म्या उपाख्यानं विज्ञातं महदद्भुतम्

भगवान् ने स्वयं उसी हाथी का मस्तक उनके कन्धे पर जोड़ दिया था। और अब इस समय यह कह रहे हैं कि—'इन्द्र ने देवों समेत क्षीरसागर में छह देवों की पूजा के उपरान्त लक्ष्मी की भी पूजा की थी। हे वेदविदों में श्रेष्ठ! इन्हीं बातों के कारण पुराणवक्ताओं की बातें मनुष्यों के लिए दुर्बोध होती है। अतः इस सिद्धान्त को सुस्पष्ट बताने की कृपा करें ॥८२-८६॥

नारायण बोले—जिस समय मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा ने इन्द्र को शाप दिया था, उस समय गणेश का जन्म नहीं हुआ था, वे पूजा के समय उत्पन्न हुए थे। हे मुने! ब्रह्म-शाप के कारण देवगण अति चिरकाल तक दुःखी होकर इधर-उधर घूम रहे थे। पश्चात् भगवान् के वरदान द्वारा उन्होंने लक्ष्मी प्राप्त की ॥८७-८८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में लक्ष्मीपूजा—
विधान नामक उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३९॥

अध्याय ४०

स्वाहा के जन्म आदि का कथन

नारद बोले—हे नारायण, हे महाभाग! हे प्रभो! रूप, गुण, यश, तेज और कान्ति में अपने समान आप ही हो। तुम्हीं ज्ञानियों, सिद्धों, योगियों, तपस्वियों, मुनियों और वेद-वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ हो। मैंने महालक्ष्मी का

अन्यत्किंचिदुपाख्यानं निगूढं वद सांप्रतम्। अतीव गोपनीयं यदुपयुक्तं च सर्वतः।
अप्रकाश्यं पुराणेषु वेदोक्तं धर्मसंयुतम् ॥३॥

नारायण उवाच

नानाप्रकारमाख्यानमप्रकाश्यं पुराणतः। श्रुतौ कतिविधं गूढमास्ते ब्रह्मन्सुदुर्लभम् ॥४॥
तेषु यत्सारभूतं च श्रोतुं किं वा त्वमिच्छसि। तन्मे ब्रूहि महाभाग पश्चाद्वक्ष्यामि तत्पुनः ॥५॥

नारद उवाच

स्वाहा देवहविर्दाने प्रशस्ता सर्वकर्मसु। पितृदाने स्वधा शस्ता दक्षिणा सर्वतो वरा ॥६॥
एतासां चरितं जन्म फलं प्राधान्यमेव च। श्रोतुमिच्छामि ते वक्त्राद्वद वेदविदां वर ॥७॥

सौतिरुवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुंगवः। कथां कथितुमारेभे पुराणोक्तां पुरातनीम् ॥८॥

नारायण उवाच

सृष्टेः प्रथमतो देवाश्चाऽऽहारार्थं ययुः पुरा। ब्रह्मलोके ब्रह्मसभामगम्यां सुमनोहराम् ॥९॥
गत्वा निवेदनं चक्रुर्मुने त्वाहारहेतुकम्। ब्रह्मा श्रुत्वा प्रतिज्ञाय सिषेवे श्रीहरेः पदम् ॥१०॥

यह महान् एवं अद्भुत उपाख्यान आपके द्वारा जान लिया। अब इस समय कोई अन्य गूढ़, उपाख्यान बताने की कृपा करें, जो अति गोपनीय, सबके उपयुक्त, पुराणों में अप्रकाशित, वेदोक्त और धर्मपूर्ण हो ॥१-३॥

नारायण बोले—हे ब्रह्मन्! अनेक भाँति के आख्यान हैं, जो पुराणों में प्रकाशित हैं। वेदों में इस भाँति के अनेक और गूढ़ उपाख्यान हैं, जो अन्य के लिए अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥४॥ उनमें भी जो उनका सारभूत है, क्या तुम उन्हें सुनना चाहते हो? हे महाभाग! यदि चाहते हो तो, कहो, मैं उन्हें फिर सुनाने को तैयार हूँ ॥५॥

नारद बोले—देवों के उद्देश्य से सभी कर्मों में हवि दान में स्वाहा प्रशस्त मानी गयी हैं और पितरों के उद्देश्य से (कव्यदान में) स्वधा; किन्तु दक्षिणा की प्रशंसा सब से अधिक है; अतः इन सबका चरित, जन्म तथा प्रधान फल आपके मुख से सुनना चाहता हूँ। आप वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं इसलिए बताने की कृपा करें ॥६-७॥

सौति बोले—नारद की ऐसी बातें सुन कर मुनिश्रेष्ठ नारायण ने हँसते हुए पुराण सम्बन्धी पुरानी कथाओं को कहना आरम्भ किया ॥८॥

नारायण बोले—पूर्वकाल में सृष्टि के अनन्तर देवों ने आहार के अन्वेषणार्थ ब्रह्मलोक में ब्रह्मा की सभा में पहुँचे जो दूसरों के लिए अगम्य और अत्यन्त मनोहर थी ॥९॥ हे मुने! वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने अपने आहारार्थ ब्रह्मा से निवेदन किया। अनन्तर ब्रह्मा ने भी उनकी बातें सुनकर उसकी पूर्ति के लिए प्रतिज्ञा की और तदर्थ भगवान् के चरण की आराधना आरम्भ की ॥१०॥ तब भगवान् अपनी कला (अंश) द्वारा यज्ञ रूप होकर अवतीर्ण हुए। यज्ञ में जिस-जिस हवि का दान किया जाता है, ब्रह्मा ने देवों के निमित्त सब कुछ

यज्ञरूपो हि भगवान्कलया च बभूव सः। यज्ञे यद्यद्धविर्दानं दत्तं तेभ्यश्च वेधसा ॥११॥
हविर्ददति विप्राश्च [1]भक्ता च क्षत्रियादयः। सुरा नैव प्राप्नुवन्ति तद्दानं मुनिपुंगव ॥१२॥
देवा विषण्णास्ते सर्वे तत्सभां च पुनर्ययुः। गत्वा निवेदनं चक्रुराहाराभावहेतुकम् ॥१३॥
ब्रह्मा श्रुत्वा तु मनसा श्रीकृष्णं शरणं ययौ। प्रकृतिं पूजयामास ध्यायन्नेव तदाज्ञया ॥१४॥
प्रकृतिः कलया चैव सर्वशक्तिस्वरूपिणी। बभूव दाहिका शक्तिरग्नेः स्वाहास्वरूपिणी ॥१५॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभान्यक्कारकारिणी। अतीव सुन्दरी रामा रमणीया मनोहरा ॥१६॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकारिणी। उवाचेति विधेरग्रे पद्मयोने वरं वृणु ॥१७॥
विधिस्तद्वचनं श्रुत्वा संभ्रमात्समुवाच ताम् ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

त्वमग्नेर्दाहिकाशक्तिर्भवपत्नी च सुन्दरी। दग्धुं न शक्तः स्वहुतं हुताशश्च त्वया विना ॥१९॥
त्वन्नामोच्चार्य मन्त्रान्ते यद्दास्यति हविर्नरः। सुरेभ्यस्तत्प्राप्नुवन्ति सुराः सानन्दपूर्वकम् ॥२०॥
अग्नेः संपत्स्वरूपा च श्रीरूपा च गृहेश्वरी। देवानां पूजिता शश्वन्नरादीनां भवाम्बिके ॥२१॥

किया। हे मुनिपुंगव! यज्ञ में भक्तिपूर्वक ब्राह्मण, क्षत्रिय लोगों ने हवि का दान किया, किन्तु वह दान देवों को न प्राप्त हो सका ॥११-१२॥ अनन्तर देवों ने खिन्न मन होकर पुनः ब्रह्म-सभा के लिए प्रस्थान किया और वहाँ पहुँच कर उनसे अपने आहार न मिलने का कारण निवेदन किया ॥१३॥ उपरान्त ब्रह्मा उनकी बातें सुनकर मन से भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में प्राप्त हुए और उनकी आज्ञा से ध्यान करते हुए उन्होंने प्रकृति की पूजा की ॥१४॥ पश्चात् समस्त शक्ति का स्वरूप धारण करने वाली वह प्रकृति अपनी कला (अंश) से अग्नि की दाहिका (जलाने वाली) शक्ति होकर उत्पन्न हुई, जिसे स्वाहास्वरूप कहा जाता है ॥१५॥ ग्रीष्मकालीन-मध्याह्न के सूर्य की प्रभा को तिरस्कृत करने वाला उसकी कान्ति थी। इस प्रकार अत्यन्त सुन्दरी, रमणीया और मनोहर उसकी वह मूर्ति थी ॥१६॥ मन्द मुसुकान करती हुई उस प्रसन्नवदना ने, जो भक्तों पर (सदा) कृपा करती रहती है, ब्रह्म के आगे स्थित होकर उनसे कहा—'हे पद्मयोने! वर की याचना करो' ॥१७॥ ब्रह्मा ने भी उनकी बातें सुन कर घबराहट के साथ उनसे कहना आरम्भ किया ॥१८॥

ब्रह्मा बोले—तुम अग्नि की दाहिका शक्ति के रूप में उनकी सुन्दरी पत्नी बनो। क्योंकि तुम्हारे बिना अग्निदेव अपने में की गई हवन वस्तु को जलाने में असमर्थ हैं ॥१९॥ मन्त्रों के अन्त में तुम्हारे नाम का उच्चारण कर मनुष्य, देवों के निमित्त जो हवि प्रदान करेंगे, वह देवों को अत्यानन्दपूर्वक प्राप्त होगा ॥२०॥ हे अम्बिके! तुम अग्नि की सम्पत्ति स्वरूप, श्रीरूप और गृहेश्वरी (गृहस्वामिनी) तथा देवों और मनुष्यों की निरन्तर पूज्या बनो ॥२१॥ इस भाँति ब्रह्मा की यह बात सुनकर वह देवी खिन्नमन हो गयी और अपने अभिप्राय को स्वयं उसने स्वयंभू (ब्रह्मा) से कहना आरम्भ किया ॥२२॥

---

१. ख. भक्त्या।

ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा सा विषण्णा बभूव ह। तमुवाच स्वयं देवी स्वाभिप्रायं स्वयंभुवम् ॥२२॥

स्वाहोवाच

अहं कृष्णं भजिष्यामि तपसा सुचिरेण च। ब्रह्मंस्तदन्यद्यत्किंचित्स्वप्नवद्भ्रम एव च ॥२३॥
विधाता जगतां त्वं च शंभुर्मृत्युञ्जयः प्रभुः। बिभर्ति शेषो विश्वं च धर्मः साक्षी च देहिनाम् ॥२४॥
सर्वाद्यपूज्यो देवानां गणेषु च गणेश्वरः। प्रकृतिः सर्वसूः सर्वैः पूजिता यत्प्रसादतः ॥२५॥
ऋषयो मुनयश्चैव पूजिता यं निषेव्य च। तत्पादपद्मं ब्रह्मैक्यभावाद्वै चिन्तयाम्यहम् ॥२६॥
पद्मास्या पाद्ममित्युक्त्वा पद्मलाभानुसारतः। जगाम तपसे पाद्मे पद्मादीशस्य पद्मजा ॥२७॥
तपस्तेपे लक्षवर्षमेकपादेन पद्मजा। तदा ददर्श श्रीकृष्णं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥२८॥
अतीव कमनीयं च रूपं दृष्ट्वा च सुन्दरी। मूर्च्छां संप्राप कामेन कामेशस्य च कामुकी ॥२९॥
विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञस्तामुवाच सः। स्वक्रोडे च समुत्थाप्य क्षीणाङ्गीं तपसा चिरम् ॥३०॥

श्रीकृष्ण उवाच

वाराहे च त्वमंशेन मम पत्नी भविष्यसि। नाम्ना नाग्नजिती कन्या कान्ते नग्नजितस्य च ॥३१॥
अधुनाऽग्नेर्दाहिका त्वं भव पत्नी च भाविनि। मन्त्राङ्गरूपा पूता च मत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥३२॥

स्वाहा बोली—हे ब्रह्मन्! मैं अति चिरकाल तक तप करके भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त करूँगी और उन्हीं की सेवा करूँगी, क्योंकि उनसे भिन्न अन्य जो कुछ है, वह स्वप्न की भाँति भ्रमात्मक है ॥२३॥ (जिनके प्रसाद से) तुम जगत् के विधाता, शिव मृत्युंजय, शेष समस्त विश्व के पालक और धर्म सभी प्राणियों के साक्षी हैं ॥२४॥ गणेश सभी देवों में आदि पूजनीय, तथा गणों में गणेश्वर हुए और जिनकी कृपा से सब को उत्पन्न करने वाली प्रकृति सब के द्वारा पूजित हुई है ॥२५॥ एवं जिनकी सेवा कर के ऋषि-मुनि लोग पूजित हुए उन्हीं के चरण-कमल का मैं ब्रह्मैक्यभाव से चिन्तन किया करती हूँ ॥२६॥ कमलानना (स्वाहा) ने इतना कमलोत्पन्न ब्रह्मा से कह कर ब्रह्मा की आज्ञा से कमलों के तालाब में कमल में तप के हेतु प्रस्थान किया ॥२७॥ स्वाहा ने वहाँ एक चरण से स्थित होकर एक लाख वर्ष तक तप किया। अनन्तर उसे प्रकृति से परे एवं निर्गुण भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन हुआ ॥२८॥ वह सुन्दरी उनका अतिसुन्दर रूप देखकर कामेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की कामुकी बनी और काम उत्पन्न होने के नाते उस समय मूर्च्छित भी हो गयी ॥२९॥ किन्तु सर्वज्ञ (भगवान्) ने उसके अभिप्राय को जान कर चिरकाल तक तप करने के कारण उस क्षीणांगी को अपनी गोद में बैठा लिया और उससे कहा ॥३०॥

श्रीकृष्ण बोले—हे कान्ते! वराहावतार के समय तुम मेरे अंश से नग्नजित के यहाँ नाग्नजिती नामक कन्या होकर मेरी पत्नी बनोगी। हे भाविनि! इस समय तुम अग्नि की दाहिका पत्नी बन जाओ और तुम मेरी कृपा से मन्त्राङ्ग रूप एवं पवित्र रहोगी। अग्नि तुम्हें अपनी गृहेश्वरी बना कर भक्ति-भाव से तुम्हारी पूजा करके तुम सुन्दरी रमणी के साथ सानन्द रमण करेंगे। हे नारद! नारायण देव उससे

वह्निस्त्वां भक्तिभावेन संपूज्य च गृहेश्वरीम्। रमिष्यते त्वया सार्धं रामया रमणीयया ॥३३॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवो देवीमाश्वास्य नारद। तत्राऽऽजगाम संत्रस्तो वह्निर्ब्रह्मनिदेशतः ॥३४॥
ध्यानैश्च सामवेदोक्तैर्ध्यात्वा तां जगदम्बिकाम्। संपूज्य परितुष्टाव पाणिं जग्राह मन्त्रतः ॥३५॥
तदा दिव्यं वर्षशतं स रेमे रामया सह। अतीव निर्जने रम्ये संभोगसुखदे सदा ॥३६॥
बभूव गर्भस्तस्याश्च हुताशस्यैव तेजसा। तद्दधार च सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम् ॥३७॥
ततः सुषाव पुत्रांश्च रमणीयान्मनोहरान्। दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयान्क्रमेण च ॥३८॥
ऋषयो मुनयश्चैव ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः। स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य हविर्ददति नित्यशः ॥३९॥
स्वाहायुक्तं च मन्त्रं च यो गृह्णाति प्रशस्तकम्। सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य ब्रह्मन्ग्रहणमात्रतः ॥४०॥
विषहीनो यथा सर्पो वेदहीनो यथा द्विजः। पतिसेवाविहीना स्त्री विद्याहीनो यथा नरः ॥४१॥
फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो हि निन्दितः। स्वाहाहीनस्तथा मन्त्रो न द्रुतं फलदायकः ॥४२॥
परितुष्टा द्विजाः सर्वे देवाः संप्रापुराहुतिम्। स्वाहान्तेनैव मन्त्रेण सफलं सर्वकर्म च ॥४३॥
इत्येवं वर्णितं सर्वं स्वाहोपाख्यानमुत्तमम्। सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४४॥

नारद उवाच

स्वाहापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं मुनीश्वर। संपूज्य वह्निस्तुष्टाव येन तां वद मे प्रभो ॥४५॥

इस प्रकार कह कर अन्तर्हित हो गए और ब्रह्मा की आज्ञा से वहाँ भयभीत होते हुए अग्नि पहुँच गये। सामवेदोक्त ध्यान द्वारा अग्नि ने उस जगदम्बिका का ध्यान, पूजन और भली भाँति स्तुति की। अनन्तर मन्त्र द्वारा उसका पाणिग्रहण (विवाह) किया। पश्चात् अतिशून्य एवं रमणीय स्थान में, जो सम्भोग में सदा सुखदायक था, उस सुन्दरी के साथ दिव्य सौ वर्ष तक रमण किया। उपरान्त अग्नि के तेज को उसने गर्भ रूप में धारण किया, जो दिव्य बारह वर्ष तक गर्भ में सुरक्षित था। अनन्तर दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य एवं आहवनीय आदि रमणीय एवं मनोहर पुत्रों को क्रमशः उत्पन्न किया। इस प्रकार (तभी से) ऋषिगण, मुनिगण, ब्राह्मण वृन्द ने स्वाहान्त मन्त्र का उच्चारण कर नित्य हविर्दान करना आरम्भ किया। हे ब्रह्मन्! जो स्वाहायुक्त मन्त्र को प्रशस्त जान कर ग्रहण करता है, उसे ग्रहण मात्र से सर्व सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। जिस प्रकार विषरहित सर्प, वेदविहीन ब्राह्मण, पतिसेवा से रहित स्त्री, विद्याहीन मनुष्य और फल-शाखा रहित वृक्ष निन्दित है, उसी भाँति स्वाहाहीन मंत्र शीघ्र फलदायक नहीं होता है। अतः स्वाहान्त मंत्र के उच्चारण द्वारा ब्राह्मण गण सन्तुष्ट हुए, सभी देवों को आहुति प्राप्त होने लगी और सभी कर्म सफल होने लगे। इस प्रकार स्वाहा का उत्तम आख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया, जो सुखदायक, मोक्षप्रद और सार रूप है। अब और क्या सुनना चाहते हो ॥३१-४४॥

नारद बोले—हे मुनीश्वर! हे प्रभो! स्वाहा का पूजा-विधान, ध्यान, स्तोत्र तथा पूजनोपरान्त अग्नि ने जिसके द्वारा उनकी स्तुति की, वह मुझे बताने की कृपा करें ॥४५॥

नारायण उवाच

ध्यानं च सामवेदोक्तं स्तोत्रं पूजाविधानकम् । वदामि श्रूयतां ब्रह्मन्सावधानं निशामय ॥४६॥
सर्वयज्ञारम्भकाले शालग्रामे घटेऽथवा । स्वाहां संपूज्य यत्नेन यज्ञं कुर्यात्फलाप्तये ॥४७॥
स्वाहां मन्त्राङ्गभूतां च मन्त्रसिद्धिस्वरूपिणीम् । सिद्धां च सिद्धिदां नृणां कर्मणां फलदां भजे ॥४८॥
इति ध्यात्वा च मूलेन दत्त्वा पाद्यादिकं नरः । सर्वसिद्धिं लभेत्स्तुत्वा मूलं स्तोत्रं मुने शृणु ॥४९॥
ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहेत्यनेन च । यः पूजयेच्च तां देवीं सर्वेष्टं लभते ध्रुवम् ॥५०॥

वह्निरुवाच

स्वाहाऽऽद्या प्रकृतेरंशा मन्त्रतन्त्राङ्गरूपिणी । मन्त्राणां फलदात्री च धात्री च जगतां सती ॥५१॥
सिद्धिस्वरूपा सिद्धा च सिद्धिदा सर्वदा नृणाम् । हुताशदाहिकाशक्तिस्तत्प्राणाधिकरूपिणी ॥५२॥
संसारसाररूपा च घोरसंसारतारिणी । देवजीवनरूपा च देवपोषणकारिणी ॥५३॥
षोडशैतानि नामानि यः पठेद्भक्तिसंयुतः । सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य चेह लोके परत्र च ॥५४॥
नाङ्गहीनो भवेत्तस्य सर्वकर्मसु शोभनम् । अपुत्रो लभते पुत्रमभार्यो लभते प्रियाम् ॥५५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० स्वाहोपा० स्वाहाजन्मादिकथनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

नारायण बोले—हे ब्रह्मन्! सामवेदोक्त ध्यान, स्तोत्र तथा पूजाविधान मैं कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ॥४६॥ फल-प्राप्ति के लिए समस्त यज्ञों के आरम्भ में शालग्राम में अथवा कलश में स्वाहा का पूजन कर के यज्ञ करना चाहिए ॥४७॥ मन्त्र की अंगभूत, मन्त्र-सिद्धि स्वरूप, सिद्ध एवं सिद्धप्रद और मनुष्यों को कर्मफल प्रदान करने वाली स्वाहा की मैं सेवा कर रहा हूँ, ऐसा ध्यान कर के मूलमंत्र द्वारा उन्हें अर्घ्य-पाद्य प्रदान तथा स्तुति करने पर मनुष्य को सर्वसिद्धि प्राप्त हो जाती है। हे मुने! अब उनके मूल स्तोत्र को बता रहा हूँ, सुनो ॥४८-४९॥ 'ओं ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहा' इस मन्त्र द्वारा जो उस देवी की पूजा करता है उसके सभी इष्ट निश्चित सफल होते हैं ॥५०॥

वह्नि बोले—आद्य स्वाहा, प्रकृति की कला, मन्त्रतन्त्र का अंगस्वरूप, मंत्रो का फल देने वाली, समस्त संसार को धारण करने वाली, सती, सिद्धिस्वरूपा, सिद्धा, मनुष्यों को सदा सिद्धि देने वाली अग्नि की दाहिका शक्ति, उन्हें उनके प्राणों से अधिक प्रिय, संसार का सार भाग, घोर संसार से तारने वाली, देवताओं का जीवन रूप, तथा उनका पालन-पोषण करने वाली; इन सोलह नामों को जो भक्तिपूर्वक पढ़ता है, उसे लोक-परलोक की समस्त सिद्धि प्राप्त होती है ॥५१-५४॥ उसका कोई भी कार्य अंगहीन नहीं होता है। सभी कर्म सुन्दर ढंग से सफल होते हैं। इससे पुत्रहीन को पुत्र और स्त्रीविहीन को स्त्री की प्राप्ति होती है ॥५५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवादविषयक स्वाहा-उपाख्यान में स्वाहाजन्मादिकथननामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि स्वधोपाख्यानमुत्तमम् । पितॄणां वै तृप्तिकरं श्राद्धानां फलवर्धनम् ॥१॥
सृष्टेरादौ पितृगणान्ससर्ज जगतां विधिः । चतुरो वै मूर्तिधरस्त्रींश्च तेजः स्वरूपिणः ॥२॥
सप्त दृष्ट्वा पितृगणान्सिद्धिरूपान्मनोहरान् । आहारं ससृजे तेषां श्राद्धतर्पणपूर्वकम् ॥३॥
स्नानं तर्पणपर्यन्तं श्राद्धान्तं देवपूजनम् । आह्निकं च त्रिसंध्यान्तं विप्राणां च श्रुतौ श्रुतम् ॥४॥
नित्यं न कुर्याद्यो विप्रस्त्रिसंध्यं श्राद्धतर्पणम् । बलिं वैश्वानिं सोऽपि विषहीनो यथोरगः ॥५॥
हरिसेवाविहीनश्च श्रीहरेरनिवेद्यभुक् । जन्मान्तं सूतकं तस्य न कर्मार्हः स नारद ॥६॥
ब्रह्मा श्राद्धादिकं सृष्ट्वा जगाम पितृहेतवे । न प्राप्नुवन्ति पितरो ददति ब्राह्मणादयः ॥७॥
सर्वे प्रजग्मुः क्षुधिता विषण्णा ब्रह्मणः सभाम् । सर्वे निवेदनं चक्रुस्तमेव जगतां विधिम् ॥८॥
ब्रह्मा च मानसीं कन्यां ससृजे तां मनोहराम् । रूपयौवनसंपन्नां शरच्चन्द्रसमप्रभाम् ॥९॥
विद्यावतीं गुणवतीमपि रूपवतीं सतीम् । श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ॥१०॥
विशुद्धां प्रकृतेरंशां सस्मितां वरदां शुभाम् । स्वधाभिधानां सुदतीं लक्ष्मीं लक्षणसंयुताम् ॥११॥

अध्याय ४१

स्वधा की उत्पत्ति आदि का कथन

नारायण बोले—हे नारद ! मैं तुम्हें स्वधा का परमोत्तम उपाख्यान बता रहा हूँ, जो पितरों को तृप्ति प्रदान करने वाला और श्राद्धों के फल में वृद्धि करने वाला है ॥१॥ जगत् के रचयिता ब्रह्मा ने सृष्टि के आरम्भ में पितर लोगों की रचना की—जिनमें चार मूर्तिधारी और तीन तेजः स्वरूप थे ॥२॥ उन सातों पितरगणों को देखकर, जो सिद्धि स्वरूप एवं मनोहर थे, ब्रह्मा ने श्राद्ध-तर्पणपूर्वक उनके आहार की रचना की ॥३॥ वेदों में ब्राह्मणों के लिए—स्नान, तर्पण, श्राद्ध, देवपूजन और तीनों काल की संध्या आदि आह्निक कर्म बताये गए हैं ॥४॥ इसलिए जो ब्राह्मण नित्य तीनों काल की संध्या, श्राद्ध-तर्पण, बलिवैश्वदेव और वेदपाठ नहीं करता है, उसे विषरहित सर्प की भाँति (व्यर्थ) जानना चाहिए ॥५॥ हे नारद ! भगवान् की सेवा से रहित और भगवान् को बिना निवेदन किए भोजन करने वाला पुरुष मरण पर्यन्त अशुद्ध रहता है, वह किसी भी कार्य के योग्य नहीं होता है ॥६॥ इस प्रकार ब्रह्मा ने श्राद्ध आदि की रचना कर के पितरों को सौंप दिया और ब्राह्मण आदि लोग पितरों के उद्देश्य से उन कर्मों को सुसम्पन्न भी करने लगे, किन्तु वह पितरों को प्राप्त न हो सका ॥७॥ उपरान्त सभी पितरगण क्षुधा पीड़ित होने से खिन्न मन होकर ब्रह्मा की सभा में गये और जगद्विधाता (ब्रह्मा) से उन्होंने निवेदन किया ॥८॥ उसे सुनकर ब्रह्मा ने एक मानसी कन्या उत्पन्न की, जो मनोहर, रूप-यौवनसम्पन्न, शरत्-ऋतु की चन्द्रमा के समान कान्तिमती, विद्यावती, गुणवती, रूपवती, पतिव्रता, श्वेत चम्पक के समान वर्ण वाली, रत्नों के भूषणों से भूषित, अति शुद्ध, प्रकृति की कला, मन्द मुसुकाती, वरदायिनी, शुभमूर्ति एवं स्वधा नाम की थी। सुन्दर दाँतों वाली वह लक्षणों से युक्त एवं शोभा-सम्पन्न

शतपद्मपदन्यस्तपादपद्मं च बिभ्रतीम् । पत्नीं पितॄणां पद्मास्यां पद्मजां पद्मलोचनाम् ॥१२॥
पितृभ्यस्तां ददौ कन्यां तुष्टेभ्यस्तुष्टिरूपिणीम् । ब्राह्मणानां चोपदेशं चक्रे वै गोपनीयकम् ॥१३॥
स्वधान्तं मन्त्रमुच्चार्य पितृभ्यो देहि चेति च। क्रमेण तेन विप्राश्च पित्रे दानं ददुः पुरा ॥१४॥
स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा वरा । सर्वत्र दक्षिणा शस्ता हतो यज्ञस्त्वदक्षिणः ॥१५॥
पितरो देवता विप्रा मुनयो मानवास्तथा । पूजां चक्रुः स्वधां शान्तां तुष्टाव परमादरम् ॥१६॥
देवादयश्च संतुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः । विप्रादयश्च पितरः स्वधादेवीवरेण च ॥१७॥
इत्येवं कथितं सर्वं स्वधोपाख्यानमुत्तमम् । सर्वेषां वै तुष्टिकरं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१८॥

नारद उवाच

स्वधापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं महामुने। श्रोतुमिच्छामि यत्नेन वद वेदविदां वर ॥१९॥

नारायण उवाच

तद्ध्यानं स्तवनं ब्रह्मन्वेदोक्तं सर्वसंमतम् । सर्वं जानासि वक्ष्ये वै ज्ञातुमिच्छसि वृद्धये ॥२०॥
शरत्कृष्णत्रयोदश्यां मघायां श्राद्धवासरे । स्वधां संपूज्य यत्नेन ततः श्राद्धं समाचरेत् ॥२१॥
स्वधां नाभ्यर्च्य यो विप्रः श्राद्धं कुर्यादहंमतिः । न भवेत्फलभाक्सत्यं श्राद्धतर्पणयोस्तथा ॥२२॥

थी। शतदल कमल के चिह्न से युक्त उसके चरण-कमल थे । वह पितरों की पत्नी, कमलवदना, कमल से उत्पन्न और कमललोचना थी। उस तुष्टि रूप कन्या को उन्होंने पितरों को सौंप दिया और ब्राह्मणों को गोपनीय उपदेश भी प्रदान किया ॥९-१३॥ कि—मंत्रों के अन्त में स्वधा जोड़ कर पितरों के उद्देश्य से (पिण्ड आदि वस्तुएँ) समर्पित करना। उसी क्रम से ब्राह्मण लोग पूर्वकाल से पितरों को दान देते आ रहे हैं। ॥१४॥ देवों के निमित्त दान में स्वाहा, पितरों के दान में स्वधा और सभी कर्म में दक्षिणा प्रशस्त बतायी गयी है। दक्षिणा रहित यज्ञ नष्टप्राय होता है ॥१५॥ अनन्तर पितरगण, देवता, ब्राह्मण वृन्द, मुनिगण और सभी मानवों ने शान्त-स्वरूप उस स्वधा की पूजन समेत परमादर से स्तुति की ॥१६॥ पश्चात् स्वधा देवी के वरदान से देव आदि परम सन्तुष्ट हुए और ब्राह्मणों आदि का भी मनोरथ परिपूर्ण हुआ ॥१७॥ इस प्रकार स्वधा देवी का परमोत्तम उपाख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया है, जो सभी को संतुष्ट रखता है, अतः अब और क्या सुनना चाहते हो ॥१८॥

नारद बोले—हे महामुने ! हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! मैं स्वधा का पूजा-विधान, ध्यान और स्तोत्र सुनना चाहता हूँ, यत्नपूर्वक कहने की कृपा करें ॥१९॥

नारायण बोले—हे ब्रह्मन् ! उनका ध्यान, तथा वेदोक्त स्तुति, जो सर्वसम्मत सिद्ध है, तुम जानते हो। किन्तु (ज्ञान) वृद्धि के लिए फिर जानना चाहते हो, अतः कह रहा हूँ, सुनो ! ॥२०॥ शरत्काल की कृष्ण त्रयोदशी के मघा (नक्षत्र) युक्त श्राद्ध-दिन में पहिले स्वधा का पूजन कर के पश्चात् श्राद्ध करना चाहिए ॥२१॥ जो अहंमानी ब्राह्मण स्वधा का बिना पूजन किए श्राद्धकर्म करता है, उसे सचमुच श्राद्ध-तर्पण का फल नहीं प्राप्त

ब्रह्मणो मानसीं कन्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् । पूज्यां पितृणां देवानां श्राद्धानां फलदां भजे ॥२३॥
इति ध्यात्वा घटे रम्ये शालग्रामेऽथवा शुभे । दद्यात्पाद्यादिकं तस्यै मूलेनेति श्रुतौ श्रुतम् ॥२४॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहेति च महामनुम् । समुच्चार्य च संपूज्य स्तुत्वा तां प्रणमेद्द्विजः ॥२५॥
स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र विशारद । सर्ववाञ्छाप्रदं नृणां ब्रह्मणा यत्कृतं पुरा ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

स्वधोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवेन्नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो वाजपेयफलं लभेत् ॥२७॥
स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत् । श्राद्धस्य फलमाप्नोति [1]बलेश्च तर्पणस्य च ॥२८॥
श्राद्धकाले स्वधास्तोत्रं यः शृणोति समाहितः । लभेच्छ्राद्धशतानां च पुण्यमेव न संशयः ॥२९॥
स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । प्रियां विनीतां स लभेत्साध्वीं पुत्रं गुणान्वितम् ॥३०॥
पितृणां प्राणतुल्या त्वं द्विजजीवनरूपिणी । श्राद्धाधिष्ठातृदेवी च श्राद्धादीनां फलप्रदा ॥३१॥
बहिर्मन्मनसो गच्छ पितृणां तुष्टिहेतवे । संप्रीतये द्विजातीनां गृहिणां [2]वृद्धिहेतवे ॥३२॥
नित्यानित्यस्वरूपाऽसि गुणरूपाऽसि सुव्रते । आविर्भावस्तिरोभावः सृष्टौ च प्रलये तव ॥३३॥

होता है ॥२२॥ ब्रह्मा की उस मानसी कन्या की मैं सेवा कर रहा हूँ, जो निरन्तर अति स्थायी यौवनावस्था से युक्त, पितरों तथा देवों की पूज्या और श्राद्धों की फलदायिका है ॥२३॥ इस प्रकार किसी सुन्दर कलश या शुभ शालग्राम की मूर्ति में स्वधा का ध्यान कर के मूल मंत्र द्वारा उसे पाद्य, अर्घ्य आदि देना चाहिए, ऐसा वेदों में सुना गया है ॥२४॥ 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधा देव्यै स्वाहा' इस महामंत्र के उच्चारणपूर्वक उसका पूजन और स्तुति कर के ब्राह्मणों को प्रणाम करना चाहिए ॥२५॥ हे मुनिश्रेष्ठ! विशारद! ब्रह्मपुत्र! उसका स्तोत्र सुनो, जो मनुष्यों की सभी अभिलाषाओं की सिद्धि करने वाला है और जिसे ब्रह्मा ने स्वयं पूर्व काल में बनाया था ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—स्वधा शब्द के उच्चारण मात्र से मनुष्य तीर्थस्नान का फल प्राप्त करता है, और समस्त पापों से मुक्त होकर वाजपेय यज्ञ का फलभागी होता है ॥२७॥ 'स्वधा, स्वधा, स्वधा' इस प्रकार तीन बार जो उच्चारण करता है, उसे श्राद्ध, बलि और तर्पण के फल प्राप्त होते हैं ॥२८॥ श्राद्ध के समय स्वधा का स्तोत्र जो सावधान होकर सुनता है, उसे सौ श्राद्ध का पुण्य प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं ॥२९॥ तीनों संध्याओं में जो मनुष्य स्वधा शब्द का उच्चारण करता है, उसे प्रिय, विनीत सती पत्नी और गुणी पुत्र की प्राप्ति होती है ॥३०॥ तुम पितरों के प्राण-तुल्य, ब्राह्मणों के जीवन रूप, श्राद्ध की अधिष्ठात्री देवी और श्राद्ध आदि का फल प्रदान करने वाली हो ॥३१॥ पितरों की तुष्टि के लिए तुम हमारे मन से बाहर हो जाओ, इससे द्विजातियों को प्रसन्नता तथा गृहस्थों की वृद्धि होगी ॥३२॥ हे सुव्रते! तुम नित्य तथा अनित्य स्वरूप और गुण रूप हो, सृष्टि और प्रलय में तुम्हारा क्रमशः आविर्भाव (प्रकट होना) और तिरोभाव (अदृश्य होना) होता है ॥३३॥ तुम्हीं ओं, स्वस्ति, नमः, स्वाहा, स्वधा और दक्षिणा

---

१. ख. कालतर्पणयोस्तथा। २. क० बुद्धि०।

ॐ स्वस्ति च नमः स्वाहा स्वधा त्वं दक्षिणा तथा। निरूपिताश्चतुर्वेदे षट् प्रशस्ताश्च कर्मिणाम् ॥३४॥
पुराऽऽसीस्त्वं स्वधागोपी गोलोके राधिकासखी। धृता स्वोरसि कृष्णेन यतस्तेन स्वधा स्मृता ॥३५॥
ध्वस्ता त्वं राधिकाशापाद्गोलोकाद्विश्वमागता। कृष्णालिङ्गनपुण्येन भूता मे मानसी सुता। अतृप्ता सुरते तेन चतुर्णां स्वामिनां प्रिया ॥३७॥
कृष्णालिङ्गनपुण्येन भूता मे मानसी सुता। अतृप्ता सुरते तेन चतुर्णां स्वामिनां प्रिया ॥३७॥
स्वाहा सा सुन्दरी गोपी पुराऽऽसीद्राधिकासखी। रतौ स्वयं कृष्णमाह तेन स्वाहा प्रकीर्तिता ॥३८॥
कृष्णेन सार्धं सुचिरं वसन्ते रासमण्डले। प्रमत्ता सुरते श्लिष्टा दृष्टा सा राधया पुरा ॥३९॥
तस्याः शापेन सा ध्वस्ता गोलोकाद्विश्वमागता। कृष्णालिङ्गनपुण्येन समभूद्वह्निकामिनी ॥४०॥
पवित्ररूपा परमा देवाद्यैर्वन्दिता नृभिः। यन्नामोच्चारणेनैव नरो मुच्येत पातकात् ॥४१॥
या सुशीलाभिधा गोपी पुराऽऽसीद्राधिकासखी। उवास दक्षिणे क्रोडे कृष्णस्य च[1] महात्मनः ॥४२॥
प्रध्वस्ता सा च तच्छापाद्गोलोकाद्विश्वमागता। कृष्णालिङ्गनपुण्येन सा बभूव च दक्षिणा ॥४३॥
सा प्रेयसी रतौ दक्षा प्रशस्ता सर्वकर्मसु। उवास दक्षिणे भर्तुर्दक्षिणा तेन कीर्तिता ॥४४॥
गोप्यो बभूवुस्तिस्रो वै स्वधा स्वाहा च दक्षिणा। कर्मिणां कर्मपूर्णार्थं पुरा चैवेश्वरेच्छया ॥४५॥

रूप हो, क्योंकि ये छहों, चारों वेदों में, कर्मनिष्ठों के लिए प्रशस्त बताये गये हैं ॥३४॥ पहले समय में तुम गोलोक में स्वधा नाम की गोपी और राधिका जी की सखी थीं। भगवान् कृष्ण ने तुम्हें अपने हृदय से लगाया था इसी लिए तुम्हारा 'स्वधा' नाम हुआ ॥३५॥ और राधिका जी के शाप के कारण तुम्हें गोलोक से इस विश्व में आना पड़ा। पहले समय में जब वृन्दावन में तुम कृष्ण का आलिंगन कर रही थीं, उस समय भी राधिका जी ने देख लिया था ॥३६॥ किन्तु कृष्ण के आलिंगनजन्य पुण्य के प्रभाव से तुम हमारी मानसी कन्या हुई हो। रति में अतृप्त होने के नाते तुम्हें चार पति प्राप्त हुए हैं ॥३७॥ पहले समय में स्वाहा भी सुन्दरी गोपी और राधिका जी की सखी थी। रति के लिए उसने स्वयं कृष्ण से कहा था, इसीलिए उसे 'स्वाहा' कहा गया है ॥३८॥ पूर्वकाल में वसन्त के समय रास-मण्डल में उसने कृष्ण के साथ अति चिरकाल तक संभोग किया था और राधिका जी ने उसे देख लिया था ॥३९॥ उन्हीं के शाप से गोलोक से वह संसार में आई है और कृष्ण के आलिंगनजन्य पुण्य से अग्नि की पत्नी हुई है ॥४०॥ जो पवित्र रूप, श्रेष्ठ तथा देवों और मनुष्यों से वन्दित एवं जिसके नामोच्चारण मात्र से मनुष्य पातक से मुक्त हो जाता है ॥४१॥ जो पहले सुशीला नाम की गोपी और राधिका जी की सखी थी, वह महात्मा कृष्ण की दाहिनी गोद में बैठी थी ॥४२॥ राधिका जी के शाप से उसे गोलोक से संसार में आना पड़ा और श्रीकृष्ण के आलिंगजन्य पुण्य के नाते वह दक्षिणा हुई है ॥४३॥ वह प्रेयसी रति में अति दक्ष (निपुण) तथा सभी कर्मों में प्रशस्त है और पति की दक्षिण (दाहिनी) गोद में रहने के कारण उसे 'दक्षिणा' कहा गया है ॥४४॥ इस प्रकार कर्मनिष्ठ प्राणियों के कर्म सफल करने के लिए ईश्वर की इच्छा से तीन गोपियाँ स्वाहा, स्वधा और दक्षिणा

---

१ क.० स्य राधिकाग्रतः।

इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा ब्रह्मलोके च संसदि । तस्थौ च सहसा सद्यः स्वधा साऽऽविर्बभूव ह ॥४६॥
तदा पितृभ्यः प्रददौ तामेव कमलाननाम् । तां संप्राप्य ययुस्ते च पितरश्च प्रहर्षिताः ॥४७॥
स्वधास्तोत्रमिदं पुण्यं यः शृणोति समाहितः । स स्नातः सर्वतीर्थेषु वेदपाठफलं लभेत् ॥४८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० स्वधोपा० स्वधोत्पत्तितत्पूजादिकं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

उक्तं स्वाहास्वधाख्यानं प्रशस्तं मधुरं परम् । वक्ष्यामि दक्षिणाख्यानं सावधानं निशामय ॥१॥
गोपी सुशीला गोलोके पुराऽऽसीत्प्रेयसी हरेः । राधाप्रधाना सध्रीची धन्या मान्या मनोहरा ॥
अतीव सुन्दरी रामा सुभगा सुदती सती ॥२॥
विद्यावती गुणवती सती रूपवती तथा । कलावती कोमलाङ्गी कान्ता कमललोचना ॥३॥
सुश्रोणी सुस्तनी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या रत्नालंकारभूषिता ॥४॥
श्वेतचम्पकवर्णाभा बिम्बोष्ठी मृगलोचना । कामशास्त्रसुनिष्णाता कामिनी कलहंसगा ॥५॥

हुईं ॥४५॥ इस प्रकार ब्रह्मलोक की उस सभा में इतना कह कर ब्रह्मा चुप हो गये, उसी समय सहसा स्वधा का आविर्भाव (साक्षात् दर्शन) हुआ ॥४६॥ अनन्तर उन्होंने वह कमलमुखी कन्या पितरों को सौंप दी, जिसे प्राप्त कर पितर गण अति हर्षित होकर चले गये ॥४७॥ इस पुण्यदायक स्वधा-स्तोत्र को जो एकाग्र चित्त से सुनता है, वह समस्त तीर्थों का स्नान-फल और वेदों का पाठ-फल प्राप्त करता है ॥४८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवादविषयक स्वधोपाख्यान में स्वधा की उत्पत्ति और पूजा आदि कथन नामक इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४१॥

अध्याय २४

दक्षिणा का उपाख्यान

नारायण बोले—मैंने स्वाहा और स्वधा का प्रशस्त एवं परम मधुर उपाख्यान सुना दिया, अब दक्षिणा का आख्यान कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ॥१॥ गोलोक में पहले सुशीला नाम की गोपी थी जो भगवान् कृष्ण की प्रेयसी, राधा की प्रधान सखी, धन्या, मान्या, मनोहरा अत्यन्त सुन्दरी, रामा, सौभाग्यपूर्ण, सुन्दर दाँतों वाली, सती, विद्यावती, गुणवती, रूपवती, कलावती, कोमलांगी, कान्ता, कमललोचना, उत्तम नितम्ब वाली, सुन्दर स्तनों वाली, श्यामा (ऋतु के अनुरूप सुख देने वाली), न्यग्रोधपरिमण्डला (कठोर कुच, स्थूल नितम्ब तथा पतली कमर वाली), मन्द मुसकान एवं प्रसन्न मुख वाली, रत्नों के आभूषणों से भूषित, श्वेतचम्पा के समान रूपरंग वाली, बिम्बाफल के समान ओष्ठ वाली, मृगनयनी, कामशास्त्र में अति निष्णात (दक्ष), कामपूर्ण, सुन्दर हंस की भाँति गमन करने वाली,

भावानुरक्ता भावज्ञा कृष्णस्य प्रियभामिनी। रसज्ञा रसिका रासे रासेशस्य रसोत्सुका ॥६॥
उवास दक्षिणे क्रोडे राधायाः पुरतः पुरा। संबभूवाऽऽनम्रमुखो भयेन मधुसूदनः ॥७॥
दृष्ट्वा राधां च पुरतो गोपीनां प्रवरां पराम्। मानिनीं रक्तवदनां रक्तपङ्कजलोचनाम् ॥८॥
कोपेन कम्पिताङ्गीं च कोपनां कोपदर्शनाम्। कोपेन निष्ठुरं वक्तुमुद्यतां स्फुरिताधराम् ॥९॥
आगच्छन्तीं च वेगेन विज्ञाय तदनन्तरम्। विरोधभीतो भगवानन्तर्धानं जगाम सः ॥१०॥
पलायन्तं च तं शान्तं सत्त्वाधारं सुविग्रहम्। विलोक्य कम्पिता गोपी सुशीलाऽन्तर्दधौ भिया ॥११॥
विलोक्य संकटं तत्र गोपीनां लक्षकोटयः। बद्धाञ्जलिपुटा भीता भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥१२॥
रक्ष रक्षेत्युक्तवत्यो हे देवीति पुनः पुनः। ययुर्भयेन शरणं तस्याश्चरणपङ्कजे ॥१३॥
त्रिलक्षकोटयो गोपाः सुदामादय एव च। ययुर्भयेन शरणं तत्पादाब्जे च नारद ॥१४॥
पलायन्तं च कान्तं वै विज्ञाय परमेश्वरी। पलायन्तीं सहचरीं सुशीलां च शशाप सा ॥१५॥
अद्यप्रभृति गोलोकं सा चेदायाति गोपिका। सद्यो गमनमात्रेण भस्मसाच्च भविष्यति ॥१६॥
इत्येवमुक्त्वा तत्रैव देवदेवीश्वरी रुषा। रासेश्वरी रासमध्ये रासेशं चाऽऽजुहाव ह ॥१७॥
नाऽऽलोक्य पुरतः कृष्णं राधा विरहकातरा। युगकोटिसमं मेने क्षणं भेदेन सुव्रता ॥१८॥

भावों में अनुरक्त रहने वाली, भगवान् कृष्ण के भावों को जानने वाली, उनकी प्रियकामिनी, रसज्ञा, रसिका और रास में रासेश्वर कृष्ण का रस (आनन्द) लेने के लिए उत्सुक थी ॥२-६॥ पूर्व काल में राधा के सामने ही वह कृष्ण की दाहिनी गोद में बैठ गई, किन्तु मधुसूदन राधा के भय से नीचे मुख किये रहे ॥७॥ सामने गोपियों में सर्वश्रेष्ठ, मान करने वाली, रक्तवदन, रक्तकमल की भाँति नेत्रों वाली, कोप से कम्पित अंगों वाली, क्रुद्ध, कोपरूप, कोपदर्शन कराने वाली, कोप के कारण निठुर बातें कहने को प्रस्तुत एवं काँपते हुए ओंठ वाली राधा को देखकर और उन्हें वेग से आती हुई जानकर उसी बीच भगवान् मधुसूदन विरोध-भय के कारण अन्तर्हित हो गये ॥८-१०॥ अनन्तर उन शान्त, सत्त्व के आधार और सुन्दर शरीर वाले (कृष्ण) को भागते हुए देखकर सुशीला गोपी भी भय से काँप उठी और अन्तर्हित हो गयी ॥११॥ वहाँ वर्तमान लाख करोड़ गोपियों ने संकट उपस्थित देखकर अंजली बांधे भय के मारे भक्ति से कन्धे को झुका लिया और बार-बार कहने लगीं कि हे देवी! हमारी रक्षा करो, हमारी रक्षा करो! तथा उन्हीं के चरणकमल की शरण में चली गयीं। हे नारद! तीन लाख करोड़ सुदामादि गोपों ने भी भयभीत होकर राधा जी के चरणकमल की शरण प्राप्त की। ॥१२-१४॥ अनन्तर परमेश्वरी राधिका ने अपने कान्त कृष्ण को भागते हुए जानकर उस भागने वाली सहचरी सुशीला को शाप दिया कि यदि आज से फिर कभी इस गोलोक में यह गोपी आयेगी तो आते ही भस्म हो जायेगी। ॥१५-१६॥ देवों और देवियों की ईश्वरी एवं रासेश्वरी राधिका रोष से इतना कहकर रासके मध्य रासेश (कृष्ण) को बुलाने लगीं ॥१७॥ विरह से कातर होती हुई उस सुव्रता राधिका ने सामने कृष्ण को न देखकर एक-एक क्षण को करोड़ों युग के समान व्यतीत किया ॥१८॥ हे कृष्ण! हे प्राणनाथ! हे प्राणों से अधिक प्यारे!

हे कृष्ण हे प्राणनाथाऽऽगच्छ प्राणाधिकप्रिय । प्राणाधिष्ठातृदेवेह प्राणा यान्ति त्वया विना ॥१९॥
स्त्रीगर्वः पतिसौभाग्याद्वर्धते च दिने दिने । सुस्त्री चेद्विभवो यस्मात्तं भजेद्धर्मतः सदा ॥२०॥
पतिर्बन्धुः कुलस्त्रीणामधिदेवः सदागतिः । परं संपत्स्वरूपश्च सुखरूपश्च मूर्तिमान् ॥२१॥
धर्मदः सुखदः शश्वत्प्रीतिदः शान्तिदः सदा । संमानदो मानदश्च मान्यो वै मानमण्डनः ॥२२॥
सारात्सारतमः स्वामी बन्धूनां बन्धुवर्धनः । न च भर्तृसमो बन्धुः सर्वबन्धुषु दृश्यते ॥२३॥
भरणादेव भर्ताऽयं पालनात्पतिरुच्यते । शरीरेशाच्च स स्वामी कामदः कान्त एव च ॥२४॥
बन्धुश्च सुखबन्धाच्च प्रीतिदानात्प्रियः परः । ऐश्वर्यदानादीशश्च प्राणेशात्प्राणनायकः ॥२५॥
रतिदानाच्च रमणः प्रियो नास्ति प्रियात्परः । पुत्रस्तु स्वामिनः [1]शुक्राज्जायते तेन स प्रियः ॥२६॥
शतपुत्रात्परः स्वामी कुलजानां प्रियः सदा । असत्कुलप्रसूता या कान्तं विज्ञातुमक्षमा ॥२७॥
स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् । प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च सर्वाणि च तपांसि वै ॥२८॥
सर्वाण्येव व्रतादीनि महादानानि यानि च । उपोषणानि पुण्यानि यान्यन्यानि च विश्वतः ॥२९॥
गुरुसेवा विप्रसेवा देवसेवादिकं च यत् । स्वामिनः पादसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३०॥
गुरुविप्रेष्टदेवेषु सर्वेभ्यश्च पतिर्गुरुः । विद्यादाता यथा पुंसां कुलजानां तथा प्रियः ॥३१॥

शीघ्र आओ। हे प्राणों के अधिष्ठाता देव! तुम्हारे बिना अब प्राण जा रहे हैं॥१९॥ क्योंकि पति-सौभाग्य से ही स्त्री का गर्व दिन-दिन बढ़ता है। यदि उत्तम स्त्री है तो जिसके द्वारा (घर में) ऐश्वर्य प्राप्त होता है उसकी उसे सदा सेवा करनी चाहिए ॥२०॥ क्योंकि कुलीन स्त्रियों का बन्धु पति ही होता है। वह उनका अधीश्वर देव, सदा उनकी गति, परम सम्पत्तिस्वरूप, मूर्तिमान् सुखरूप, धर्म-सुखदायक, निरन्तर प्रीतिप्रद; सदा शान्तिदाता, सम्मान देनेवाला, मानप्रद, मान्य, मानविभूषण, सारभाग का भी सारभाग, स्वामी एवं बन्धुओं का बन्धुवर्द्धक है। इसी कारण समस्त बन्धुओं में पति के समान कोई बन्धु (स्त्रियों को) नहीं दिखायी देता है ॥२१-२३॥ क्योंकि भरण से भर्ता, पालन से पति, शरीर का ईश होने से स्वामी, कामदकान्त, सुखबन्धन के नाते बन्धु, प्रीतिदान से परम-प्रिय, ऐश्वर्य देने से ईश, प्राणेश्वर होने से प्राणनायक और रतिदान से रमण कहा जाता है। पति से बढ़कर कोई प्रिय नहीं है। स्वामी के शुक्र (वीर्य) से पुत्र होता है, इसी से वह प्रिय कहलाता है ॥२४-२६॥ इस प्रकार कुलीन स्त्रियों को सैकड़ों पुत्रों से भी स्वामी सदा प्रिय होता है और अकुलीन स्त्री तो पति को जानने में समर्थ ही नहीं हो सकती है॥२७॥ समस्त तीर्थों में स्नान, सभी यज्ञों की दीक्षा, सम्पूर्ण पृथिवी की प्रदक्षिणा, सब भाँति के तप, समस्त व्रत, सभी प्रकार के महादान, समस्त संसार के जितने अन्य पुण्य उपवास, गुरुसेवा विप्रसेवा और देवों आदि की सेवायें हैं, वे स्वामी की चरण-सेवा के सोलहवें अंश के समान भी नहीं होती हैं॥२८-३०॥ गुरु, ब्राह्मण, इष्टदेव इनमें और इनसे बढ़कर पति ही गुरु है। पुरुषों के विद्यादाता की भाँति कुलीना स्त्रियों को पति ही प्रिय होता है॥३१॥ तीन लाख करोड़ गोपियाँ उतने ही गोपों, असंख्य ब्रह्माण्ड,

---

१. क० क्रोडाज्जा० ।

गोपीत्रिलक्षकोटीनां गोपानां च तथैव च । ब्रह्माण्डानामसंख्यानां तत्रस्थानां तथैव च ॥३२॥
रमादिगोपकान्तानामीश्वरी यत्प्रसादतः । अहं न जाने तं कान्तं स्त्रीस्वभावो दुरत्ययः ॥३३॥
इत्युक्त्वा राधिका कृष्णं तत्र दध्यौ सुभक्तितः । आरात्संप्राप तं तेन विजहार च तत्र वै ॥३४॥
अथ सा दक्षिणा देवी ध्वस्ता गोलोकतो मुने । सुचिरं च तपस्तप्त्वा विवेश कमलातनौ ॥३५॥
अथ देवादयः सर्वे यज्ञं कृत्वा सुदुष्करम् । न लभन्ते फलं तेषां विषण्णाः प्रययुर्विधिम् ॥३६॥
विधिर्निवेदनं श्रुत्वा देवादीनां जगत्पतिः । दध्यौ सुचिन्ततो भक्त्या तत्प्रत्यादेशमाप सः ॥३७॥
नारायणश्च भगवान्महालक्ष्म्याश्च देहतः । मर्त्यलक्ष्मीं विनिष्कृत्य ब्रह्मणे दक्षिणां ददौ ॥३८॥
ब्रह्मा ददौ तां यज्ञाय पूर्णार्थं कर्मणां सताम् । यज्ञः संपूज्य विधिवत्तां तुष्टाव रमां मुदा ॥३९॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम् । अतीव कमनीयां च सुन्दरीं सुमनोहराम् ॥४०॥
कमलास्यां कोमलाङ्गीं कमलायतलोचनाम् । कमलासनसंपूज्यां कमलाङ्गसमुद्भवाम् ॥४१॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां बिम्बोष्ठीं सुदतीं सतीम् । बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यभूषितम् ॥४२॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् । सुवेषाढ्यां च सुस्नातां मुनिमानसमोहिनीम् ॥४३॥
कस्तुरीबिन्दुभिः सार्धं चन्दनैश्च सुगन्धिभिः । सिन्दूरबिन्दुनाऽत्यन्तं मस्तकाधःस्थलोज्ज्वलाम् ॥४४॥

एवं उसमें रहने वाले रमा आदि के गोपकान्ताओं की मैं उन्हीं (कृष्ण) की कृपा से स्वामिनी हूं, किन्तु उस अपने कान्त को मैं नहीं जानती (कहाँ चले गये), स्त्री का स्वभाव कैसा उलटा होता है ॥३२-३३॥ इतना कहकर राधिका ने अति भक्ति से कृष्ण का ध्यान किया, जिससे वे शीघ्र आ गये और वे उनके साथ विहार करने लगीं ॥३४॥

हे मुने ! अनन्तर उस दक्षिणा देवी ने, गोलोक से निकल कर अति चिरकाल तक तप किया और कमला की देह में प्रविष्ट हो गयी ॥३५॥ पश्चात् देव आदि लोगों ने अति कठिन यज्ञ आरम्भ किया। उसके सुसम्पन्न होने के अनन्तर उसके फल की प्राप्ति न होने पर वे खिन्नमन हो गये और पुनः ब्रह्मा के पास पहुँचे। जगत्पति ब्रह्मा ने देवों आदि की प्रार्थना सुनकर अतिचिन्तित होते हुए भक्तिपूर्वक भगवान् का ध्यान लगाया और उनका प्रत्यादेश प्राप्त किया ॥३६-३७॥ तदनन्तर नारायण भगवान् और महालक्ष्मी ने (अपनी) देह से मनुष्यलक्ष्मी दक्षिणा को निकाल कर ब्रह्मा को सौंप दिया ॥३८॥ और ब्रह्मा ने उसे कर्मनिष्ठ सज्जनों के कर्म-परिपूरणार्थ यज्ञ को सौंप दिया। उपरान्त यज्ञ ने हर्षित होकर विधिवत् उसकी पूजा और स्तुति की ॥३९॥ वह तपाये हुए सुवर्ण के समान, रूप-रंगवाली, करोड़ों चन्द्रमा की भाँति कान्तिवाली, अत्यन्त लुभाने वाली, सुन्दरी, मनमोहनी, कमलमुखी, कोमलांगी, कमल की भाँति विशाल नेत्र वाली, कमलासन पर सम्पूजित, कमला (लक्ष्मी) के अंग से उत्पन्न, अग्नि की भाँति शुद्धवस्त्र धारण करने वाली बिम्बाफल के समान ओष्ठ वाली, सुन्दर दांतों वाली, पतिव्रता, केशपाशभूषित, मन्द-हासयुक्त, प्रसन्नमुख, रत्नों के भूषणों से अलंकृत, सुन्दर वेष बनाये तथा उत्तम ढंग से स्नान किये हुई और मुनियों के मन को मोहित करने वाली थी। सुगन्धित चन्दन युक्त कस्तूरी और सिन्दूर बिन्दु से उसके मस्तक का अधोभाग समुज्ज्वल था, अतिप्रशंसनीय नितम्ब, विशाल श्रोणी भाग तथा कुचों से युक्त, कामदेव की आधारस्वरूप वह सुन्दरी

सुप्रशस्तनितम्बाढ्यां बृहच्छ्रोणिपयोधराम् । कामदेवाधाररूपां कामबाणप्रपीडिताम् ॥४५॥
तां दृष्ट्वा रमणीयां च यज्ञो मूर्च्छामवाप ह । पत्नीं तामेव जग्राह विधिबोधितमार्गतः ॥४६॥
दिव्यं वर्षशतं चैव तां गृहीत्वाऽथ निर्जने । यज्ञो रेमे मुदा युक्तो रामया रमया सह ॥४७॥
गर्भं दधार सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम् । ततः सुषाव पुत्रं च फलं वै सर्वकर्मणाम् ॥४८॥
कर्मणां [1]फलदाता च दक्षिणां कर्मणां सताम् । परिपूर्णे कर्मणि च तत्पुत्रः फलदायकः ॥४९॥
यज्ञो दक्षिणया सार्धं पुत्रेण च फलेन च । कर्मणां फलदाता चेत्येवं वेदविदो विदुः ॥५०॥
यज्ञश्च दक्षिणां प्राप्य पुत्रं च फलदायकम् । फलं ददौ च सर्वेभ्यः कर्मठेभ्यो यदा मुने ॥५१॥
तदा देवादयश्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः । स्वस्थानं प्रययुः सर्वे धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम् ॥५२॥
कृत्वा कर्म च कर्ता तु तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम् । तत्क्षणं फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदं मुने ॥५३॥
कर्ता कर्मणि पूर्णेऽपि तत्क्षणाद्यदि दक्षिणाम् । न दद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथवा ॥५४॥
मुहूर्ते समतीते च द्विगुणा सा भवेद्ध्रुवम् । एकरात्रे व्यतीते तु भवेद्रसगुणा च सा ॥५५॥
त्रिरात्रे वै दशगुणा सप्ताहे द्विगुणा ततः ॥५६॥
मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्धते । संवत्सरे व्यतीते तु सा त्रिकोटिगुणा भवेत् ॥५७॥

काम-बाण से अतिपीड़ित हो रही थी ॥४०-४५॥ ऐसी सुन्दरी को देखते ही यज्ञ मूर्च्छित होकर गिर पड़े। पश्चात् ब्रह्मा ने आकर उन्हें जागरित किया और बताया जिससे उन्होंने उसे पत्नी रूप में ग्रहण किया ॥४६॥ अनन्तर उस परम सुन्दरी रामा को निर्जन स्थान में ले जाकर यज्ञ ने दिव्य सौ वर्ष तक अतिहर्ष से उसके साथ रमण किया ॥४७॥ तब दिव्य बारह वर्ष तक गर्भ धारण करने के पश्चात् उस देवी ने पुत्र उत्पन्न किया, जो समस्त कर्मों का फलरूप है॥४८॥ दक्षिणा सज्जनों को उनके कर्मों का फल प्रदान करती है और कर्म के पूर्ण होने पर उसका पुत्र फल देता है ॥४९॥ वेद-वेत्ताओं का कहना है कि यज्ञ (अपनी पत्नी) दक्षिणा और पुत्र फल के साथ कर्मों का फल प्रदान करता है ॥५०॥ हे मुने! जिस समय दक्षिणा पत्नी और फलदायक पुत्र को पाकर यज्ञ ने सभी कर्मठ प्राणियों को फल प्रदान किया, उस समय देवगण अति प्रसन्न हुए और परिपूर्णमनोरथ होकर वे अपने-अपने स्थान को चले गये, ऐसा धर्म के मुख से हमने सुना है ॥५१-५२॥ हे मुने! जो कर्ता (कोई यज्ञ आदि) कर्म करके उसकी दक्षिणा तुरन्त दे देता है, उसी समय उसे फल की प्राप्ति हो जाती है, ऐसा वेदों में कहा गया है ॥५३॥ यदि कर्ता दैव से अज्ञानवश कर्म समाप्त होने पर उसी समय दक्षिणा ब्राह्मणों को नहीं दे देता है, तो एक मुहूर्त व्यतीत होने पर वह दक्षिणा दुगुनी हो जाती है ॥५४-५५॥ एक रात्रि व्यतीत होने पर वह छह गुनी, तीन रात्रि व्यतीत होने पर दशगुनी, सप्ताह बीतने पर (उसकी) दुगुनी तथा मास व्यतीत होने पर ब्राह्मणों की दक्षिणा लाख गुनी बढ़ जाती है और वर्ष व्यतीत होने पर वह तीन करोड़ गुनी हो जाती है ॥५६-५७॥ इस प्रकार

---

१ क. पूर्णरूपा च ।

कर्म तद्यजमानानां सर्वं वै निष्फलं भवेत्। स च ब्रह्मस्वापहारी न कर्माहोंऽशुचिर्नरः ॥५८॥
दरिद्रो व्याधियुक्तश्च तेन पापेन पातकी। तद्गृहाद्याति लक्ष्मीश्च शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥५९॥
पितरो नैव गृह्णन्ति तद्दत्तं श्राद्धतर्पणम्। एवं सुराश्च तत्पूजां तद्दत्तां पावकाहुतिम् ॥६०॥
दाता ददाति नो दानं गृहीता तन्न याचते। उभौ तौ नरकं यातश्छिन्नरज्जुर्यथा घटः ॥६१॥
नार्पयेद्यजमानश्चेद्याचितारं च दक्षिणाम्। भवेद्ब्रह्मस्वापहारी कुम्भीपाकं व्रजेद्ध्रुवम् ॥६२॥
वर्षलक्षं वसेत्तत्र यमदूतेन ताडितः। ततो भवेत्स चाण्डालो व्याधियुक्तो दरिद्रकः ॥६३॥
पातयेत्पुरुषान्सप्त पूर्वान्वै पूर्वजन्मनः। इत्येवं कथितं विप्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥६४॥

नारद उवाच

यत्कर्म दक्षिणाहीनं को भुङ्क्ते तत्फलं मुने। पूजाविधिं दक्षिणायाः पुरा यज्ञकृतं वद ॥६५॥

नारायण उवाच

कर्मणोऽदक्षिणस्यैव कुत एव फलं मुने। सदक्षिणे कर्मणि च फलमेव प्रवर्धते ॥६६॥
या या कर्मणि सामग्री बलिर्भुङ्क्ते च तां मुने। बलये तत्प्रदत्तं च वामनेन पुरा मुने ॥६७॥
अश्रोत्रियं श्राद्धवस्तु चाश्राद्धं दानमेव च। वृषलीपतिविप्राणां पूजाद्रव्यादिकं च यत् ॥६८॥

यजमान का वह सब कर्म निष्फल हो जाता है तथा वह मनुष्य ब्राह्मण के धन का अपहरण करने का अपराधी, कर्म करने के अयोग्य और अपवित्र हो जाता है ॥५८॥ उस पाप के कारण वह पातकी दरिद्र और रोगी होता है और लक्ष्मी उसे अति भयानक शाप देकर उसके घर से चली जाती है ॥५९॥ उसके किये हुए श्राद्ध-तर्पण को पितरगण ग्रहण नहीं करते हैं। इसी प्रकार देवगण उसकी पूजा और अग्नि में दी गयी आहुति को ग्रहण नहीं करते हैं ॥६०॥ यदि दाता दान नहीं देता है और ग्रहण करने वाला याचना करता ही रहता है, तो वे दोनों कटी हुई रस्सी वाले घड़े की भाँति नरक में जाते हैं ॥६१॥ यजमान यदि दक्षिणा नहीं देता है, तो वह ब्राह्मण-धन का अपहर्ता कहा जाता है और अन्त में निश्चित कुम्भीपाक नरक में जाता है ॥६२॥ एक लाख वर्ष तक उसमें रहते हुए नित्य यमदूतों से ताड़ित होता है। अनन्तर रोगी एवं दरिद्र चाण्डाल होता है तथा पूर्वजन्म की पिछली और आगे वाली सात पीढ़ियों को नरक भेजता है। हे विप्र! इस प्रकार इस आख्यान को मैंने सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ॥६३-६४॥

नारद बोले—हे मुने! दक्षिणाहीन कर्म के फल का उपभोग कौन करता है और पूर्वकाल में यज्ञ ने किस विधान से दक्षिणा की पूजा की थी ॥६५॥

नारायण बोले—हे मुने! दक्षिणारहित कर्म का फल होता कहाँ है। दक्षिणा समेत सुसम्पन्न किये गये कर्म का ही फल प्रवृद्ध होता है ॥६६॥ हे मुने! जिस कर्म में जो सामग्री होती है, उसका उपभोग बलि करते हैं, इसे पहले ही वामन ने बलि को दे दिया था ॥६७॥ इस प्रकार वेदविद्याविहीन पुरुष को श्राद्ध वस्तु, श्रद्धा-रहित दान, वृषली (शूद्रा स्त्री) के पति ब्राह्मण देव की पूजा की सामग्री, ऋत्विज्विहीन यज्ञ, अशुद्ध का पूजन

ऋत्विजा न कृतं यज्ञमशुचेः पूजनं च यत्। गुरावभक्तस्य कर्म बलिर्भुङ्क्ते न संशयः ॥६९॥
दक्षिणायाश्च यद्ध्यानं स्तोत्रं पूजाविधिक्रमम् । तत्सर्वं काण्वशाखोक्तं प्रवक्ष्यामि निशामय ॥७०॥
पुरा संप्राप्य तां यज्ञः कर्मदक्षां च दक्षिणाम् । मुमोह तस्या रूपेण तुष्टुवे कामकातरः ॥७१॥

यज्ञ उवाच

पुरा गोलोकगोपी त्वं गोपीनां प्रवरा परा । राधासमा तत्सखी च श्रीकृष्णप्रेयसी प्रिये ॥७२॥
कार्तिके पूर्णिमायां तु रासे राधामहोत्सवे । आविर्भूता दक्षिणांशात्कृष्णस्यातो हि दक्षिणा ॥७३॥
पुरा त्वं च सुशीलाख्या शीलेन सुशुभेन च । कृष्णदक्षांशवासाच्च राधाशापाच्च दक्षिणा ॥७४॥
गोलोकात्त्वं परिध्वस्ता मम भाग्यादुपस्थिता । कृपां कुरु त्वमेवाद्य स्वामिनं कुरु मां प्रिये ॥७५॥
कर्तॄणां कर्मणां देवी त्वमेव फलदा सदा । त्वया विना च सर्वेषां सर्वं कर्म च निष्फलम् ॥७६॥
फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो महीतले । त्वया विना तथा कर्म कर्तॄणां च न शोभते ॥७७॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च दिक्पालादय एव च । कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्च त्वया विना ॥७८॥
कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा फलरूपी महेश्वरः । यज्ञरूपी विष्णुरहं त्वमेषां साररूपिणी ॥७९॥
फलदाता परं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृते परः । स्वयं कृष्णश्च भगवान्न च शक्तस्त्वया विना ॥८०॥

और गुरुभक्तिहीन पुरुष के कर्म का उपभोग बलि करता है, इसमें संशय नहीं ॥६८-६९॥ अब दक्षिणा देवी का जो ध्यान, स्तोत्र और पूजा विधान है, वह सब कुछ काण्वशाखा के अनुसार बता रहा हूँ, सुनो ॥७०॥

पूर्वकाल में यज्ञ, कर्मकुशल दक्षिणा को प्राप्त कर उसके रूप पर अत्यन्त मोहित हो गये और काम-पीड़ित होकर उसकी स्तुति करने लगे ॥७१॥

यज्ञ बोले—हे प्रिये! पूर्व समय में तुम गोलोक में गोपियों में श्रेष्ठ गोपी, राधा जी की सखी और राधा के समान ही श्रीकृष्ण की प्रेयसी थी ॥७२॥ कार्तिक की पूर्णिमा में राधामहोत्सव के समय रास में तुम कृष्ण के दक्षिण भाग से उत्पन्न हुई थी इसलिए तुम्हारा दक्षिणा नामकरण हुआ था ॥७३॥ पहले तुम उत्तम शुभ-शील से सम्पन्न सुशीला नाम की गोपी थी। कृष्ण की दक्षिण (दाहिनी) गोद में निवास करने और राधा के शाप के कारण भी तुम्हें दक्षिणा कहते हैं ॥७४॥ हे प्रिये! हमारे भाग्य से तुम गोलोक से यहाँ आयी हो, मेरे ऊपर कृपा करो—आज मुझे अपना स्वामी निश्चय बनाओ ॥७५॥ कर्ताओं के कर्मों की तुम फलदायिनी देवी हो, तुम्हारे बिना सभी लोगों के सब कर्म निष्फल हो जाते हैं ॥७६॥ जिस प्रकार भूतल में फल और शाखा हीन वृक्ष की शोभा नहीं होती है, उसी प्रकार तुम्हारे बिना कर्ताओं के कर्म सुशोभित नहीं होते हैं ॥७७॥ इस भाँति ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा दिक्पाल आदि सभी तुम्हारे बिना कर्मफल देने में असमर्थ रहते हैं ॥७८॥ स्वयं ब्रह्मा कर्मरूपी हैं, महेश्वर फलरूपी, विष्णु यज्ञरूपी और हम तुम इनके सार भाग हैं ॥७९॥ निर्गुण एवं प्रकृति से परे रहने वाले परब्रह्म फल के दाता कहे गये हैं किन्तु स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी तुम्हारे बिना फल देने में असमर्थ रहते

त्वमेव शक्तिः कान्ते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि । सर्वकर्मणि शक्तोऽहं त्वया सह वरानने ॥८१॥
इत्युक्त्वा तत्पुरस्तस्थौ यज्ञाधिष्ठातृदेवकः । तुष्टा बभूव सा देवी भेजे तं कमलाकला ॥८२॥
इदं च दक्षिणास्तोत्रं यज्ञकाले च यः पठेत् । फलं च सर्वयज्ञानां लभते नात्र संशयः ॥८३॥
राजसूये वाजपेये गोमेधे नरमेधके । अश्वमेधे लाङ्गले च विष्णुयज्ञे यशस्करे ॥८४॥
धनदे भूमिदे [1]फल्गौ पुत्रेष्टौ गजमेधके । लोहयज्ञे स्वर्णयज्ञे [2]पटलव्याधिखण्डने ॥८५॥
शिवयज्ञे रुद्रयज्ञे शक्रयज्ञे च [3]बन्धके । इष्टौ वरुणयागे च कन्दुके वैरिमर्दने ॥८६॥
शुचियागे धर्मयागे रेचने पापमोचने । [4]बन्धने कर्मयागे च मणियागे सुभद्रके ॥८७॥
एतेषां च समारम्भ इदं स्तोत्रं च यः पठेत् । निर्विघ्नेन च तत्कर्म साङ्गं भवति निश्चितम् ॥८८॥
इति स्तोत्रं च कथितं ध्यानं पूजाविधिं शृणु । शालग्रामे घटे वाऽपि दक्षिणां पूजयेत्सुधीः ॥८९॥
लक्ष्मीदक्षांशसंभूतां दक्षिणां [5]कमलाकलाम् । सर्वकर्मसु दक्षां च फलदां सर्वकर्मणाम् ॥९०॥
विष्णोः शक्तिस्वरूपां च पूजितां वन्दितां शुभाम् । शुद्धिदां शुद्धिरूपां च सुशीलां शुभदां भजे ॥९१॥
ध्यात्वाऽनेनैव वरदां सुधीमूलेन पूजयेत् । दत्त्वा पाद्यादिकं देव्यै वेदोक्तेन च नारद ॥९२॥
ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहेति च विचक्षणः । पूजयेद्विधिवद्भक्त्या दक्षिणां सर्वपूजिताम् ॥९३॥

हैं ॥८०॥ हे कान्ते! तुम हमारे प्रत्येक जन्म की निरन्तर शक्ति हो, हे वरानने! तुम्हारे ही साथ रहने से हम सभी कर्मों में समर्थ हैं ॥८१॥ इतना कहकर यज्ञ के अधिष्ठाता देव उसके सामने स्थित रहे। अनन्तर वह कमला की कला (दक्षिणा) भी प्रसन्न होकर (पतिरूप में) उनकी सेवा करने लगी ॥८२॥ इस प्रकार इस दक्षिणास्तोत्र का जो यज्ञ के समय पाठ करता है, उसे समस्त यज्ञों का फल प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं ॥८३॥ एवं राजसूय, वाजपेय, गोमेध, नरमेध, अश्वमेध, लांगल, यशोदायक विष्णुयज्ञ, धनप्रद एवं भूमिदायक फल्गुयज्ञ, पुत्रेष्टियज्ञ, गजमेध, लोहयज्ञ, नेत्ररोगनाशक सुवर्णयज्ञ, शिवयज्ञ, रुद्रयज्ञ, इन्द्रयज्ञ, वरुणयज्ञ, कन्दुक, वैरिमर्दन, शुचियाग, धर्मयाग, पापमोचन, रेचन, बन्धन, कर्मयाग और अतिकल्याणप्रद मणियाग—इन यज्ञों के आरम्भ के समय जो इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसका कर्म निश्चित ही सांगोपांग और निर्विघ्न समाप्त होता है ॥८४-८८॥ इस प्रकार स्तोत्र और ध्यान बता दिये। अब पूजा का विधान सुनो—शालग्राम या कलश में दक्षिणा का आवाहन-पूजन विद्वानों को करना चाहिए ॥८९॥ दक्षिणा कमला की कला और लक्ष्मी के दाहिने अंश से उत्पन्न हुई है, जो समस्त कर्मों में दक्ष (कुशल) और समस्त कर्मों का फल प्रदान करती है ॥९०॥ भगवान् विष्णु की शक्तिस्वरूप, पूजित, वन्दित, शुभ, शुद्धिदायक, शुद्धिरूप और शुभप्रद उस सुशीला की सेवा कर रहा हूं। इस प्रकार ध्यान करके उस वरदायिनी की पूजा मूलमंत्र द्वारा विद्वान् को करनी चाहिए ॥९१॥ हे नारद! उस देवी के लिए वेदोक्त विधान से पाद्य आदि देकर 'ओं श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहा' इसी मंत्र द्वारा भक्तिपूर्वक विद्वान् को समस्त की पूजित दक्षिणा की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार मैंने दक्षिणा

---

१ क. फालौ । २ क. पाटले व्या० । ३क. ०बन्धुके । ४ क. वर्धने । ५ क. ०लाननाम् ।

इत्येवं कथितं सर्वं दक्षिणाख्यानमुत्तमम् । सुखदं प्रीतिदं चैव फलदं सर्वकर्मणाम् ॥९४॥
इदं च दक्षिणाख्यानं यः शृणोति समाहितः । अङ्गहीनं च तत्कर्म न भवेद्भारते भुवि ॥९५॥
अपुत्रो लभते पुत्रं निश्चितं च गुणान्वितम् । भार्याहीनो लभेद्भार्यां सुशीलां सुन्दरीं पराम् ॥९६॥
वरारोहां पुत्रवतीं विनीतां प्रियवादिनीम् । पतिव्रतां सुव्रतां च शुद्धां च कुलजां वराम् ॥९७॥
विद्याहीनो लभेद्विद्यां धनहीनो धनं लभेत् । भूमिहीनो लभेद्भूमिं प्रजाहीनो लभेत्प्रजाः ॥९८॥
संकटे बन्धुविच्छेदे विपत्तौ बन्धने तथा । मासमेकमिदं श्रुत्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥९९॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० दक्षिणोपा० दक्षिणोत्पत्तितत्पूजादिविधानं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

अनेकासां च देवीनां श्रुतमाख्यानमुत्तमम् । अन्यासां चरितं ब्रह्मन्वद वेदविदां वर ॥१॥

नारायण उवाच

सर्वासां चरितं विप्र वेदेष्वस्ति पृथक्पृथक् । पूर्वोक्तानां च देवीनां त्वं कासां श्रोतुमिच्छसि ॥२॥

का उत्तम आख्यान तुम्हें सुना दिया, जो सुखप्रद, प्रीतिदायक और समस्त कर्मों का फल प्रदान करता है। अतः इस दक्षिणाख्यान को जो एकाग्रचित्त से सुनता है, भारतभूतल में उसका कोई भी कर्म अंगहीन नहीं होता है। ॥९२-९५॥ इससे पुत्रहीन को गुणी पुत्र की निश्चित ही प्राप्ति होती है और स्त्रीहीन को सुशील, सुन्दरी, श्रेष्ठ, अनुपम, पुत्रवती, विनीत, प्रिय बोलने वाली, पतिव्रता, सुन्दर नियमवाली, शुद्ध, कुलीन और श्रेष्ठ स्त्री की प्राप्ति होती है। विद्याहीन को विद्या, धनहीन को धन, भूमिरहित को भूमि, प्रजा (सन्तान) हीन को प्रजा (सन्तान) की प्राप्ति होती है और किसी भी भाँति का संकट, बन्धुओं का वियोग, विपत्ति अथवा किसी प्रकार का बन्धन उपस्थित होने पर एक मास तक इसका श्रवण करने से मनुष्य उस संकट से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥९६-९९॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण संवादविषयक दक्षिणोपाख्यान में दक्षिणा की उत्पत्ति और पूजनादिविधान वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४२॥

अध्याय ४३

षष्ठी देवी का उपाख्यान

नारद बोले—हे ब्रह्मन्! हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! मैं अनेक देवियों का उत्तम आख्यान सुन चुका, अब अन्य के चरित सुनाने की कृपा कीजिये ॥१॥

नारायण बोले—हे विप्र! पूर्वोक्त देवियों के चरित वेदों में पृथक्-पृथक् बताये गये हैं। उनमें तुम किन देवियों के चरित सुनना चाहते हो ॥२॥

नारद उवाच

षष्ठी मङ्गलचण्डी च मनसा प्रकृतेः कला । उत्पत्तिमासां चरितं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥३॥

नारायण उवाच

षष्ठांशा प्रकृतेर्या च सा च षष्ठी प्रकीर्तिता । बालकाधिष्ठातृदेवी विष्णुमाया च बालदा ॥४॥
मातृकासु च विख्याता देवसेनाभिधा च सा । प्राणाधिकप्रिया साध्वी स्कन्दभार्या च सुव्रता ॥५॥
आयुःप्रदा च बालानां धात्री रक्षणकारिणी । सततं शिशुपार्श्वस्था योगाद्वै सिद्धियोगिनी ॥६॥
तस्याः पूजाविधौ ब्रह्मन्निति हासविधिं शृणु । यच्छ्रुतं धर्ममुखतो सुखदं पुत्रदं परम् ॥७॥
राजा प्रियव्रतश्चासीत्स्वायंभुवमनोः सुतः । योगीन्द्रो नोद्वहेद्भार्यां तपस्यासु रतः सदा ॥८॥
ब्रह्माज्ञया च यत्नेन कृतदारो बभूव सः । सुचिरं कृतदारश्च न लेभे तनयं मुने ॥९॥
पुत्रेष्टियज्ञं तं चापि कारयामास कश्यपः । मालिन्यै तस्य कान्तायै मुनिर्यज्ञचरुं ददौ ॥१०॥
भुक्त्वा चरुं च तस्याश्च सद्यो गर्भे बभूव ह । दधार तं च सा देवी दैवं द्वादशवत्सरम् ॥११॥
ततः सुषाव सा ब्रह्मन्कुमारं कनकप्रभम् । सर्वावयवसंपन्नं मृतमुत्तारलोचनम् ॥१२॥
तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वा नार्यो वै बान्धवस्त्रियः । मूर्च्छामवाप तन्माता पुत्रशोकेन सुव्रता ॥१३॥

नारद बोले—मैं षष्ठी, मंगलचण्डी और प्रकृति की कला रूप मनसा देवी की उत्पत्ति और चरित तत्त्वतः सुनना चाहता हूँ ॥३॥

नारायण बोले—प्रकृति के छठे अंश से उत्पन्न होने के नाते उस देवी को षष्ठी कहा जाता है, जो बालकों की अधिष्ठात्री देवी, भगवान् विष्णु की माया और बालदा (सन्तान देने वाली) कही जाती है ॥४॥ वह मातृकाओं में प्रख्यात एवं 'देवसेना' नाम की है। वह स्कन्द की पत्नी, उनके प्राणों से अधिक प्रिय, पतिव्रता और सुन्दर नियमाचरण करने वाली है ॥५॥ एवं बालकों की जीवनदायिनी, रक्षा करनेवाली धाय, निरन्तर बच्चों के समीप रहने वाली और योग द्वारा सिद्धियोगिनी है ॥६॥ हे ब्रह्मन्! उसके पूजाविधान का जो इतिहास धर्म के मुख से मैंने सुना है, उसे सुनो। वह परम सुखदायक और पुत्रप्रद है ॥७॥

स्वायम्भुवमनु का पुत्र राजा प्रियव्रत था, जो सदा तपस्या में ही लगा रहता था। इस कारण उस योगीन्द्र ने अपना विवाह ही नहीं किया ॥८॥ पश्चात् ब्रह्मा के समझाने-बुझाने पर उसने (किसी भाँति) विवाह कर लिया, किन्तु अधिक समय व्यतीत होने पर भी उसके कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ ॥९॥ हे मुने! अनन्तर कश्यप जी ने उससे पुत्रेष्टि नामक यज्ञ सुसम्पन्न कराया और उसकी मालिनी नामक पत्नी को यज्ञ का चरु (प्रसाद रूप हवि) दिया, जिसका भक्षण करने से उसे शीघ्र गर्भ रह गया। वह देवी उस गर्भ को बारह वर्ष तक (अपने उदर में) धारण किये रही ॥१०-११॥ हे ब्रह्मन्! उपरान्त उसने एक कुमार का जन्म दिया, जो सुवर्ण के समान कान्तियुक्त और समस्त अंगों से सम्पन्न होते हुए भी आँखें उलटाये हुए मृतक था ॥१२॥ उसे देखकर सभी स्त्रियाँ और बन्धुओं की स्त्रियाँ रुदन करने लगीं और वह सुव्रता शिशु-माता तो पुत्र-शोक के कारण मूर्च्छित होकर गिर पड़ी ॥१३॥ हे मुने! राजा उस बच्चे को लेकर श्मशान गया

श्मशानं च ययौ राजा गृहीत्वा बालकं मुने । रुरोद तत्र कान्तारे पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि ॥१४॥
नोत्सृज्य बालकं राजा प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः । ज्ञानयोगं विसस्मार पुत्रशोकात्सुदारुणात् ॥१५॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमानं च ददर्श ह । शुद्धस्फटिकसंकाशं मणिराजविराजितम् ॥१६॥
तेजसा ज्वलितं शश्वच्छोभितं क्षौमवाससा । नानाचित्रविचित्राढ्यं [1]पुष्पमालाविराजितम् ॥१७॥
ददर्श तत्र देवीं च कमनीयां मनोहराम् । श्वेतचम्पकवर्णाभां रम्यसुस्थिरयौवनाम् ॥१८॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् । कृपामयीं योगसिद्धां भक्तानुग्रहकारिणीम् ॥१९॥
दृष्ट्वा तां पुरतो राजा तुष्टाव परमादरात् । चकार पूजनं तस्या विहाय भुवि बालकम् ॥२०॥
पप्रच्छ राजा तां दृष्ट्वा ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् । तेजसा ज्वलितां शान्तां कान्तां स्कन्दस्य नारद ॥२१॥

प्रियव्रत उवाच

का त्वं सुशोभने कान्ते कस्य कान्ताऽसि सुव्रते । कस्य कन्या वरारोहे धन्या मान्या च योषिताम् ॥२२॥
नृपेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा जगन्मङ्गलदायिनी । उवाच देवसेना सा देवरक्षणकारिणी ॥२३॥
देवानां [2]दैत्यभीतानां पुरा सेना बभूव सा । जयं ददौ च तेभ्यश्च देवसेना च तेन सा ॥२४॥

और वहाँ जंगल में उस पुत्र को गोद में रखकर रुदन करने लगा ॥१४॥ राजा किसी भाँति बालक को छोड़ नहीं रहा था। वह अपना प्राण देने के लिए तैयार हो गया क्योंकि अति भीषण पुत्र-शोक के नाते उसका ज्ञान-योग विस्मृत हो गया था ॥१५॥ उसी बीच उसने एक विमान देखा, जो शुद्ध स्फटिक की भाँति उत्तम मणियों से सुशोभित, तेज से प्रज्वलित, रेशमी वस्त्रों से निरन्तर विभूषित, अनेक भाँति की चित्र-विचित्र (वस्तुओं) से परिपूर्ण और पुष्पों की मालाओं से अलंकृत था ॥१६-१७॥ उस पर बैठी हुई एक सुन्दरी को देखा, जो मन को हरण करने वाली, श्वेत चम्पा पुष्प के समान रूप-रंग वाली, रमणीक और अति चिरस्थायी यौवन (वाली), मन्द मुसुकान समेत प्रसन्न मुख वाली, रत्नों के भूषणों से विभूषित, कृपा की मूर्ति, योगसिद्ध और भक्तों पर अनुग्रह करनेवाली थी ॥१८-१९॥ उसे सामने देखकर राजा ने अति आदर से उसकी स्तुति की और भूमि पर बालक को छोड़कर उस देवी की पूजा की ॥२०॥ हे नारद ! स्कन्द की उस कान्ता को देखकर, जो ग्रीष्मकालीन सूर्य के समान प्रभापूर्ण, तेज से देदीप्यमान तथा शान्त थी, राजा ने उससे पूछा ॥२१॥

प्रियव्रत बोले—हे सुशोभने, कान्ते ! तुम कौन हो? हे सुव्रते ! तुम किसकी प्रिया हो? हे वरारोहे ! तुम किसकी धन्य और स्त्रियों की मान्य कन्या हो ? राजा की बात सुनकर संसार को मंगल देने वाली और देवताओं की रक्षा करने वाली देवसेना बोली। पूर्वकाल में दैत्यों से त्रस्त देवताओं की वह सेना थी, देवों को उसने विजय दिलाई थी, इससे उसे 'देवसेना' कहते हैं ॥२२-२४॥

---

१ क. ०विनिर्मितम् । २ क. ०त्यग्रस्तानां ।

देवसेनोवाच

ब्रह्मणो मानसी कन्या देवसेनाऽहमीश्वरी । सृष्ट्वा मां मनसो धाता ददौ स्कन्दाय भूमिप ॥२५॥
मातृकासु च विख्याता [1]स्कन्दसेना च सुव्रता । विश्वे षष्ठीति विख्याता षष्ठांशा प्रकृतेर्यतः ॥२६॥
पुत्रदाऽहमपुत्राय प्रियस्त्रीदा प्रियाय च । धनदा च दरिद्रेभ्यः कर्तृभ्यः शुभकर्मदा ॥२७॥
सुखं दुःखं भयं शोकं हर्षं मङ्गलमेव च । संपत्तिश्च विपत्तिश्च सर्वं भवति कर्मणा ॥२८॥
कर्मणा बहुपुत्री च वंशहीनश्च कर्मणा । कर्मणा च दरिद्रश्च धनाढ्यश्च स्वकर्मणा ॥
कर्मणा रूपवांश्चैव रोगी शश्वत्स्वकर्मणा ॥२९॥
कर्मणा मृतपुत्रश्च कर्मणा चिरजीविनः । कर्मणा गुणवन्तश्च कर्मणा चाङ्गहीनकाः ॥३०॥
तस्मात्कर्म परं राजन्सर्वेभ्यश्च श्रुतौ श्रुतम् । कर्मरूपी च भगवांस्तद्द्वारा फलदो हरिः ॥३१॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी गृहीत्वा बालकं मुने । महाज्ञानेन सहसा जीवयामास लीलया ॥३२॥
राजा ददर्श तं बालं सस्मितं कनकप्रभम् । देवसेना च पश्यन्तं नृपमम्बरमेव च ॥३३॥
गृहीत्वा बालकं देवी गगनं गन्तुमुद्यता । पुनस्तुष्टाव तां राजा शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥३४॥
नृपस्तोत्रेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह । उवाच तं नृपं ब्रह्मन्वेदोक्तं कर्मनिर्मितम् ॥३५॥

देवसेना बोली—हे राजन् ! मैं ब्रह्मा की मानसी कन्या हूँ, देवसेना मेरा नाम है और ब्रह्मा ने मुझे मन से उत्पन्न कर स्वामिनी बनाकर स्कन्द को सौंप दिया ॥२५॥ मुझे मातृकाओं में प्रख्यात, स्कन्द-सेना, सुव्रता और प्रकृति के छठे अंश से उत्पन्न होने के नाते 'षष्ठी' भी कहते हैं ॥२६॥ मैं पुत्रहीन को पुत्र देने वाली, प्रिय को प्रिया देने वाली, दरिद्रों को धन और कर्ताओं को शुभ कर्म प्रदान करने वाली हूँ ॥२७॥ इस प्रकार प्राणी को सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मंगल, सम्पत्ति और विपत्ति सब कर्म से ही होता है ॥२८॥ कर्म से ही बहुत पुत्र, कर्म से वंश-नाश, कर्म से रूपवान्, कर्म से सदा रोगी, कर्म से मृतक पुत्र, कर्म से चिरकाल का जीवन, कर्म से गुणवान् और कर्मसे प्राणी अंगहीन होते हैं ॥२९-३०॥ हे राजन् ! इसलिए कर्म सब से श्रेष्ठ है, ऐसा वेद में सुना गया है। उसी के द्वारा कर्मरूपी भगवान् विष्णु फल प्रदान करते हैं ॥३१॥ हे मुने ! इतना कह कर उस देवी ने बालक को लेकर और लीलापूर्वक सहसा महाज्ञान द्वारा उसे जीवित कर दिया ॥३२॥ राजा ने उस बालक को देखा, जो सुवर्ण की भाँति कान्ति से युक्त और मन्दहास कर रहा था। राजा आकाश की ओर (ऊपर) देख ही रहा था कि देवसेना उस बालक को लेकर ऊपर आकाश को जाने लगी। उस समय राजा के कण्ठ, तालु और ओंठ सूख गये। उसने फिर स्तुति करना आरम्भ किया ॥३३-३४॥ हे ब्रह्मन् ! राजा के उस स्तोत्र से देवी प्रसन्न हो गयी। उसने राजा से वेदोक्त कर्म से उद्भूत वचन कहा ॥३५॥

---

१ क. ०न्दभार्या च ।

देवसेनोवाच

त्रिषु लोकेषु राजा त्वं स्वायंभुवमनोः सुतः । मम पूजां च सर्वत्र कारयित्वा स्वयं कुरु ॥३६॥
तदा दास्यामि पुत्रं ते कुलपद्मं मनोहरम् । सुव्रतं नाम विख्यातं गुणवन्तं सुपण्डितम् ॥३७॥
जातिस्मरं च योगीन्द्रं नारायणपरायणम् । शतक्रतुकरं श्रेष्ठं क्षत्रियाणां च वन्दितम् ॥३८॥
मत्तमातङ्गलक्षाणां धृतवन्तं बलं शुभम् । धन्विनं गुणिनं शुद्धं विदुषां प्रियमेव च ॥३९॥
[1]योगिनं ज्ञानिनं चैव सिद्धरूपं तपस्विनम् । यशस्विनं च लोकेषु दातारं सर्वसंपदाम् ॥४०॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी तस्मै तद्बालकं ददौ । राजा च तं स्वीचकार तत्पूजार्थं च सुव्रतः ॥४१॥
जगाम देवी स्वर्गं च दत्त्वा तस्मै शुभं वरम् । आजगाम महाराजः स्वगृहं हृष्टमानसः ॥४२॥
आगत्य कथयामास वृत्तान्तं पुत्रहेतुकम् । तुष्टा बभूवुः संतुष्टा नरा नार्यश्च नारद ॥४३॥
मङ्गलं कारयामास सर्वत्र सुतहेतुकम् । देवीं च पूजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥४४॥
राजा च प्रतिमासेषु [2]शुक्लषष्ठ्यां महोत्सवम् । षष्ठ्या देव्याश्च यत्नेन कारयामास सर्वतः ॥४५॥
बालानां सूतिकागारे षष्ठाहे यत्नपूर्वकम् । तत्पूजां कारयामास चैकविंशतिवासरे ॥४६॥
बालानां शुभकार्ये च शुभान्नप्राशने तथा । सर्वत्र वर्धयामास स्वयमेव चकार ह ॥४७॥
ध्यानं पूजाविधानं च स्तोत्रं मत्तो निशामय । यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेण कौथुमोक्तं च सुव्रत ॥४८॥

देवसेना बोली—तुम स्वायम्भुवमनु के पुत्र और तीनों लोकों के राजा हो। अतः हमारी पूजा सर्वत्र कराकर तुम स्वयं करो ॥३६॥ तभी मैं तुम्हें यह कुलकमल और मनोहर पुत्र दूँगी जो सुव्रत नाम से प्रख्यात और महा-गुणवान् पण्डित होगा। (पूर्व जन्म के) जातिस्मरण के साथ यह योगिराज, नारायणपरायण, सौ यज्ञ करने वाला, श्रेष्ठ, क्षत्रियों से वन्दित, एक लाख मतवाले गजराज का बल धारण करने वाला, शुभमूर्ति, धनुर्धर, गुणी, शुद्ध, विद्वानों का प्रिय, योगी, ज्ञानी, तपस्वी, सिद्ध, कीर्तिमान् और लोकों में समस्त सम्पत्ति का प्रदाता होगा ॥३७-४०॥ इतना कहकर उस देवी ने वह बालक राजा को दे दिया और उसने उसकी पूजा करने-कराने के लिए उसे स्वीकार किया ॥४१॥ अनन्तर उसे शुभ वरदान देकर देवी स्वर्ग चली गयी और महाराज भी अत्यन्त हर्षित होकर अपने घर आये तथा लोगों को पुत्र का वृत्तान्त सुनाने लगे। हे नारद! उसे सुनकर सभी पुरुष और स्त्रियाँ अत्यन्त प्रसन्न हुईं। राजा ने चारों ओर पुत्र के लिए मंगल कराया। देवी की पूजा के उपरान्त ब्राह्मणों को धन दान दिया ॥४२-४४॥ उसी समय से राजा प्रत्येक मास की शुक्ल-षष्ठी के दिन षष्ठी देवी का महोत्सव चारों ओर सप्रयत्न कराने लगा ॥४५॥ बालकों के सूतिक (सौरी) गृह में छठें दिन और इक्कीसवें दिन अति प्रयत्न से देवी की पूजा करायी ॥४६॥ बालकों के शुभ अवसर पर तथा अन्नप्राशन कार्य के समय उसने स्वयं सर्वत्र षष्ठी-पूजन का प्रचार किया ॥४७॥ हे सुव्रत! मैंने धर्म के मुखारविन्द से उस देवी का ध्यान, पूजा-विधान, स्तोत्र आदि जो कुछ कौथुमी शाखानुसार सुना, उसे बता रहा हूँ, सुनो ॥४८॥ हे मुने! शालग्राम, कलश, वटवृक्ष की जड़ में अथवा भीत

---

१ क. ०गिनां प्राणिनां चै० । २ क. शुक्लाष्टम्यां ।

शालग्रामे घटे वाऽथ वटमूलेऽथवा मुने। भित्त्यां पुत्तलिकां कृत्वा पूजयेद्वा विचक्षणः ॥४९॥
षष्ठांशां प्रकृतेः शुद्धां सुप्रतिष्ठां च सुव्रताम्। सुपुत्रदां च शुभदां दयारूपां जगत्प्रसूम् ॥५०॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्। पवित्ररूपां परमां देवसेनां परां भजे ॥५१॥
इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दद्यात् विचक्षणः। पुनर्ध्यात्वा च मूलेन पूजयेत्सुव्रतां सतीम् ॥५२॥
पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च गन्धधूपप्रदीपकैः। नैवेद्यैर्विविधैश्चापि फलेन च शुभेन च ॥५३॥
मूलमों ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहेति विधिपूर्वकम्। अष्टाक्षरं महामन्त्रं यथाशक्ति जपेन्नरः ॥५४॥
ततः स्तुत्वा च प्रणमेद्भक्तियुक्तः समाहितः। स्तोत्रं च सामवेदोक्तं धनपुत्रफलप्रदम् ॥५५॥
अष्टाक्षरं महामन्त्रं लक्षधा यो जपेन्मुने। स पुत्रं लभते नूनमित्याह कमलोद्भवः ॥५६॥
स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ[1] सर्वेषां च शुभावहम्। वाञ्छाप्रदं च सर्वेषां गूढं वेदे च नारद ॥५७॥

प्रियव्रत उवाच

नमो देव्यै महादेव्यै सिद्ध्यै शान्त्यै नमो नमः। शुभायै देवसेनायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥५८॥
वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमो नमः। सुखदायै मोक्षदायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥५९॥
शक्तेः षष्ठांशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः। मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥६०॥

(दीवाल) पर मूर्ति बनाकर बुद्धिमान् को उस देवी की पूजा करनी चाहिए ॥४९॥ प्रकृति के छठे अंश से उत्पन्न, शुद्ध, उत्तम प्रतिष्ठा (मर्यादा) से युक्त, शोभननियमपूर्ण, उत्तमपुत्रदायिनी, शुभप्रदा, दयानिधान, जगज्जननी, श्वेत चम्पा-पुष्प की भाँति रूप रंग वाली, रत्नों के भूषणों से भूषित और परम पवित्र रूप उस श्रेष्ठ देवसेना की मैं सेवा कर रहा हूँ ॥५०-५१॥ ऐसा ध्यान कर अपने शिर पर पुष्प रखे और पुनः ध्यानपूर्वक मूलमंत्र द्वारा उस सती की पूजा बुद्धिमान् को करनी चाहिए ॥५२॥ फिर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय (जल), गन्ध, धूप, दीप, अनेक भाँति के नैवेद्य और उत्तम फल समेत पूजन करने के अनन्तर 'ओं ह्रीं षष्ठी देव्यै स्वाहा' इस अष्टाक्षर महामन्त्र का यथाशक्ति जप करे ॥५३-५४॥ सावधान होकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और धनपुत्रदायक सामवेदोक्त स्तोत्र का पाठ करे ॥५५॥ हे मुने! इस अष्टाक्षर महामंत्र का जो एक लाख जप करता है, उसे निश्चित पुत्र की प्राप्ति होती है, ऐसा ब्रह्मा ने स्वयं कहा है ॥५६॥ हे मुनिश्रेष्ठ! नारद! सब को शुभ प्रदान करने वाला स्तोत्र भी तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो, जो सबका मनोरथपूरक और वेद में गुप्त है ॥५७॥

प्रियव्रत बोले—देवी को नमस्कार है, महादेवी, सिद्धि और शान्ति रूप को नमस्कार है, सुखदायिनी एवं मोक्षप्रद षष्ठी देवी को नमस्कार है ॥५८॥ वर प्रदान करने वाली एवं पुत्र, धन देने वाली को नमस्कार है तथा सुख-मोक्ष देने वाली षष्ठी देवी को नमस्कार है ॥५९॥ शक्ति के छठे भाग स्वरूप और सिद्धा को बार-बार नमस्कार है। माया तथा सिद्धयोगिनी षष्ठी देवी को नमस्कार है ॥६०॥ श्रेष्ठ रूप, श्रेष्ठ बनाने वाली षष्ठी देवी को नमस्कार

---

१ क. सर्वकामशु०

पारायै पारदायै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः। सारायै सारदायै च परायै सर्वकर्मणाम् ॥६१॥
बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः। कल्याणदायै कल्याण्यै फलदायै च कर्मणाम् ॥
प्रत्यक्षायै च भक्तानां षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥६२॥
पूज्यायै स्कन्दकान्तायै सर्वेषां सर्वकर्मसु। देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥६३॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपायै वन्दितायै नृणां सदा। हिंसाक्रोधैर्वर्जितायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥६४॥
धनं देहि प्रियां देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि। धर्मं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥६५॥
भूमिं देहि प्रजां देहि देहि विद्यां सुपूजिते। कल्याणं च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥६६॥
इति देवीं च संस्तूय लेभे पुत्रं प्रियव्रतः। यशस्विनं च राजेन्द्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥६७॥
षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन्यः शृणोति च वत्सरम्। अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीविनम् ॥६८॥
वर्षमेकं च या भक्त्या संयतेदं शृणोति च। सर्वपापाद्विनिर्मुक्ता महावन्ध्या प्रसूयते ॥६९॥
वीरपुत्रं च गुणिनं विद्यावन्तं यशस्विनम्। सुचिरायुष्मन्तमेव षष्ठीमातृप्रसादतः ॥७०॥

है, जो सारभाग स्वरूप और सारभाग दान करने वाली तथा समस्त कर्मों को सफल करने वाली है ॥६१॥बालकों की अधिष्ठात्री देवी षष्ठी को नमस्कार है, जो कल्याण देने वाली, कल्याणीस्वरूप तथा समस्त कर्मों का फल प्रदान करने वाली है ॥६२॥ भक्तों को साक्षात् दर्शन देने वाली षष्ठी देवी को नमस्कार है, जो स्कन्द की प्रिया और सभी लोगों की सब कर्मों में पूज्या है ॥६३॥ देवों की रक्षा करने वाली षष्ठी देवी को नमस्कार है। शुद्ध सत्त्व रूप, मनुष्यों की सदा वन्दिता तथा हिंसा-क्रोध से रहित षष्ठी देवी को नमस्कार है ॥६४॥ हे सुरेश्वरि! मुझे धन, पत्नी और पुत्र दो। मुझे धर्म और यश प्रदान करो। षष्ठी देवी को बार-बार नमस्कार है ॥६५॥ हे सुपूजिते! मुझे भूमि, सन्तान और विद्या प्रदान करो। मुझे कल्याण समेत जय प्रदान करो। मैं षष्ठी देवी को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ ॥६६॥ इस भाँति देवी की स्तुति कर के प्रियव्रत ने पुत्र की प्राप्ति की, जो षष्ठी देवी की कृपा से यशस्वी राजेन्द्र हुआ ॥६७॥ हे ब्रह्मन्! इस षष्ठी स्तोत्र को जो पूरे वर्ष तक सुनता है, उसे पुत्र की कामना से उत्तम और अतिचिरायु पुत्र प्राप्त होता है और भक्तिपूर्वक एक वर्ष तक संयम से जो स्त्री इसका श्रवण करती है, वह महावन्ध्या होने पर भी समस्त पापों से मुक्त होकर पुत्र उत्पन्न करती है ॥६८-६९॥ षष्ठी माता के प्रसाद से वीरपुत्र, गुणवान्, विद्यावान्, यशस्वी और अत्यन्त आयुष्मान् पुत्र की प्राप्ति होती है। काकवन्ध्या और जिसके बच्चे जीवित न रहते हों, वे स्त्रियाँ भी एक वर्ष तक इसका श्रवण कर के षष्ठी देवी की कृपा से पुत्र प्राप्त करती

काकवन्ध्या च या नारी मृतापत्या च या भवेत् । वर्षं श्रुत्वा लभेत्पुत्रं षष्ठीदेवी प्रसादतः ॥७१॥
रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति च । मासं च मुच्यते बालः षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥७२॥
इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० षष्ठ्युपा० षष्ठीदेव्युत्पत्ति-
तत्पूजास्तोत्रादिकथनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

कथितं षष्ठ्युपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम् । देवी मङ्गलचण्डी या तदाख्यानं निशामय ॥१॥
तस्याः पूजादिकं सर्वं धर्मवक्त्राच्च यच्छ्रुतम् । श्रुतिसंमतमेवेष्टं सर्वेषां विदुषामपि ॥२॥
चण्डा या वर्तते चण्डी जाग्रती शत्रुमण्डले । मङ्गलेषु च या दक्षा मङ्गला सैव चण्डिका ॥३॥
दुर्गायां विद्यते चण्डी मङ्गलोऽपि महीसुतः । मङ्गलाऽभीष्टदेवी या सा स्यान्मङ्गलचण्डिका ॥४॥
मङ्गलो मनुवंशश्च सप्तद्वीपावनीपतिः । तस्य पूज्याऽभीष्टदेवी तेन मङ्गलचण्डिका ॥५॥
मूर्तिभेदेन सा दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी । कृपारूपाऽतिप्रत्यक्षा योषितामिष्टदेवता ॥६॥

हैं। बच्चे के रोगी होने पर उसके माता पिता एक मास तक यदि इसका श्रवण करते हैं तो षष्ठी देवी के प्रसाद से वह बालक उसी समय रोगमुक्त हो जाता है ॥७०-७२॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायणसंवादविषयक षष्ठी-उपाख्यान में षष्ठी देवी की उत्पत्ति, पूजा और स्तोत्र आदि कथन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।.४३॥

अध्याय ४४

मंगलचंडी का उपाख्यान

नारायण बोले—हे ब्रह्मपुत्र! वेदानुसार षष्ठी देवी का उपाख्यान तुम्हें सुना दिया, अब मंगलचण्डी देवी का आख्यान सुना रहा हूँ, सुनो! उसके पूजा आदि के विषय में जो कुछ धर्म के मुख से सुना वह वेदानुसार एवं सभी विद्वानों को भी इष्ट है ॥१-२॥ कोप अर्थ में चण्डी शब्द का प्रयोग होता है, इसीलिए चण्डी देवी शत्रुसमूहों में निरन्तर जागती रहती हैं और मंगल कार्यों में निपुण होने के नाते उसे 'मंगल-चण्डी देवी' कहते हैं ॥३॥ दुर्गा के अर्थ में चण्डी शब्द का प्रयोग होता है और पृथ्वी-पुत्र के अर्थ में मंगल शब्द का । । अतः मंगल और अभीष्ट (मनोरथ) सिद्ध करने वाली देवी को 'मंगलचण्डी' कहा जाता है ॥४॥ मनु वंश में उत्पन्न मंगल की, जो सातों द्वीपों वाली पृथ्वी के स्वामी हैं, पूज्या और मनोरथ सिद्ध करने वाली देवी होने के नाते उसे 'मंगलचण्डिका' देवी कहते हैं ॥५॥ मूर्ति-भेद से वह दुर्गा, अधीश्वरी, मूलप्रकृति और स्त्रियों की इष्ट देवता है जो कृपा रूप होकर उन्हें अति प्रत्यक्ष होती रहती है ॥६॥ हे ब्रह्मन्। पूर्व काल में जब त्रिपुरासुर का वध करना था,

प्रथमे पूजिता सा च शंकरेण पुरा परा। त्रिपुरस्य वधे घोरे विष्णुना प्रेरितेन च ॥७॥
ब्रह्मन्ब्रह्मोपदेशेन दुर्गप्रस्थे च संकटे। आकाशात्पतिते याने रुषा दैत्येन पातिते ॥८॥
ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च दुर्गां तुष्टाव शंकरः। सा च मङ्गलचण्डीयमभवद्रूपभेदतः ॥९॥
उवाच पुरतः शंभोर्भयं नास्तीति ते प्रभो। भगवान्वृषरूपश्च सर्वेशश्च बभूव ह ॥१०॥
युद्धशक्तिस्वरूपाऽहं भविष्यामि तदाज्ञया। मयाऽऽत्मना च हरिणा सहायेन वृषध्वज
जहि दैत्यं च देवेश सुराणां पदघातकम् ॥११॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता देवी शंभोः शक्तिर्बभूव सा। विष्णुदत्तेन शस्त्रेण जघान तमुमापतिः ॥१२॥
मुनीन्द्र पतिते दैत्ये सर्वे देवा महर्षयः। तुष्टुवुः शंकरं देवा भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥१३॥
सद्यः शिरसि शंभोश्च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह। ब्रह्मा विष्णुश्च संतुष्टो ददौ तस्मै शुभाशिषम् ॥१४॥
ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च सुस्नातः शंकरः शुचिः। पूजयामास तां शक्तिं देवीं मङ्गलचण्डिकाम् ॥१५॥
पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च बलिभिर्विविधैरपि। पुष्पचन्दननैवेद्यैर्भक्त्या नानाविधैर्मुने ॥१६॥
छागैर्मेषैश्च महिषैर्गण्डैर्मायाविभिर्वरैः। वस्त्रालंकारमाल्यैश्च पायसैः पिष्टकैरपि ॥१७॥
मधुभिश्च सुधाभिश्च पक्वैर्नानाविधैः फलैः। संगीतैर्नर्तनैर्वाद्यैरुत्सवैः कृष्णकीर्तनैः ॥१८॥
ध्यात्वा माध्यंदिनोक्तेन ध्यानेन विधिपूर्वकम्। ददौ द्रव्याणि मूलेन मन्त्रेणैव च नारद ॥१९॥

तो भगवान् विष्णु से प्रेरित होकर शंकर ने सर्वप्रथम उस सर्वश्रेष्ठ देवी की अर्चना की ॥७॥ अनन्तर अपने दुर्ग (किले) पर संकट उपस्थित होने पर (त्रिपुरासुर) दैत्य ने शिव के रथ को अत्यन्त क्रुद्ध होकर आकाश से गिरा दिया ॥८॥ पुनः ब्रह्मा और विष्णु के सदुपदेश देने पर शंकर ने दुर्गा की आराधना की। वहीं यह रूप भेद से मंगलचण्डी हुई ॥९॥ उस समय शंकर के सामने खड़ी होकर उसने कहा—हे प्रभो! अब तुम्हें कोई भय नहीं है। भगवान् सर्वाधीश्वर वृष (बैल) रूप में तुम्हारे वाहन हुए हैं ॥१०॥ हे वृषध्वज! मैं भगवान् की आज्ञा से तुम्हारी युद्ध शक्ति का स्वरूप धारण करूँगी। हे देवेश! इस प्रकार मेरी और भगवान् की सहायता से देवों के पदापहारी उस दैत्य का हनन करो। इतना कह कर वह देवी अन्तर्हित हो गयी और शिव की शक्ति हुई। हे मुनीन्द्र! अनन्तर उमापति महादेव ने भगवान् विष्णु के दिए हुए अस्त्र द्वारा उस दैत्य का विध्वंस किया ॥११-१२॥ उपरान्त दैत्य का पतन होने पर सभी देवगण और महर्षि-वृन्दों ने भक्ति-पूर्वक कन्धे झुकाये शिव की स्तुति की। उसी समय शंकर के शिर पर पुष्पों की वृष्टि होने लगी। ब्रह्मा और भगवान् विष्णु ने सन्तुष्ट होकर उन्हें शुभाशीर्वाद प्रदान किया ॥१३-१४॥ अनन्तर ब्रह्मा और विष्णु के उपदेश देने पर शिव ने भली भाँति स्नान किया तथा पवित्र होकर शक्तिस्वरूप मंगलचण्डिका देवी की पूजा की। पाद्य, अर्घ्य, आचमन, अनेक प्रकार की बलि भक्तिपूर्वक पुष्प, चन्दन और अनेक भाँति के नैवेद्य अर्पित किये। हे मुने! उसी भाँति बकरे, भेड़े, भैंसे, गैंड़े, उत्तम जादूगर (?), वस्त्र, अलंकार, माला, खीर, मालपुए, मधु (शहद), सुधा, अनेक भाँति के पके फल, सङ्गीत, नृत्य, वाद्य और भगवान् कृष्ण के नाम संकीर्तन के उत्सव द्वारा माध्यन्दिनी शाखा के अनुसार ध्यान विधिपूर्वक करके मूल मंत्र से ही सब द्रव्य समर्पित किये ॥१५-१९॥ हे

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके । ऐं क्रूं फट् स्वाहेत्येवं चाप्येकविंशाक्षरो मनुः ॥२०॥
पूज्यः कल्पतरुश्चैव भक्तानां सर्वकामदः । दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥२१॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स विष्णुः सर्वकामदः । ध्यानं च श्रूयतां ब्रह्मन्वेदोक्तं सर्वसंमतम् ॥२२॥
देवीं षोडशवर्षीयां रम्यां सुस्थिरयौवनाम् । सर्वरूपगुणाढ्यां च कोमलाङ्गीं मनोहराम् ॥२३॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥२४॥
बिभ्रतीं कबरीभारं मल्लिकामाल्यभूषितम् । बिम्बोष्ठीं सुदतीं शुद्धां शरत्पद्मनिभाननाम् ॥२५॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां सुनीलोत्पललोचनाम् । जगद्धात्रीं च दात्रीं च सर्वेभ्यः सर्वसंपदाम् ॥२६॥
संसारसागरे घोरे पोतरूपां वरां भजे ॥२७॥
देव्याश्च ध्यानमित्येवं स्तवनं श्रूयतां मुने । प्रयतः संकटग्रस्तो येन तुष्टाव शंकरः ॥२८॥

शंकर उवाच

रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मङ्गलचण्डिके । संहर्त्रि विपदां राशेर्हर्षमङ्गलकारिके ॥२९॥
हर्षमङ्गलदक्षे च हर्षमङ्गलचण्डिके । शुभे मङ्गलदक्षे च शुभमङ्गलचण्डिके ॥३०॥

नारद! 'ओं ह्रीं, श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मंगलचण्डिके ऐं क्रूं फट् स्वाहा' यही इक्कीस अक्षर का महामंत्र है॥२०॥ यह भक्तों के लिए पूज्य, कल्पतरु और समस्त कामनाओं को सफल करने वाला है। इसके दश लाख जप करने से मनुष्यों को सिद्धि प्राप्त हो जाती है॥२१॥ और जिसे मंत्र सिद्धि हो जाती है, वह समस्त कामनाओं का दाता विष्णु हो जाता है। हे ब्रह्मन्! अब वेदोक्त और सर्वसम्मत उनका ध्यान सुनो॥२२॥ सोलह वर्ष की अवस्था वाली देवी की सेवा कर रहा हूँ, जो रमणीक, अति चिरस्थायी यौवन वाली, समस्त गुणों से पूर्ण, कोमल अंगों वाली एवं मनोहर है॥२३॥ तथा श्वेत चम्पा पुष्प के समान रूपरंग वाली, करोड़ों चन्द्रमा की भाँति कान्ति वाली, अग्नि की भाँति विशुद्ध वस्त्र एवं रत्नों के भूषणों से भूषित, केशपाश से सुशोभित, बेला की माला से विभूषित, बिम्बाफल के समान ओंठ वाली, सुन्दर दाँतों की पंक्ति वाली, शुद्ध स्वरूप, शारदीय कमल के समान मुख वाली, मन्दहास समेत प्रसन्न वदन वाली, नीलकमल की भाँति सुन्दर नेत्र वाली, जगत् को धारण करने वाली, सबको समस्त सम्पदा प्रदान करने वाली तथा इस घोर संसार-सागर को पार कराने के लिए जहाज रूप है॥२४-२७॥

हे मुने! देवी का यही ध्यान है, अब उनकी स्तुति सुनो! जिसके द्वारा शंकर ने संकट के समय पवित्र होकर स्तुति की थी॥२८॥

शंकर बोले—हे मंगलचण्डिके देवी! तुम जगत् की माता हो, हमारी रक्षा करो। तुम विपत्तियों की राशियों का संहार करने वाली एवं हर्ष और मंगल करने वाली हो॥२९॥ हर्ष और मंगल (प्रदान करने में) निपुण, हर्ष तथा मंगलचण्डी स्वरूप, शुभमंगल देने वाली तथा शुभमंगलचण्डी हो॥३०॥ एवं मंगलमूर्ति, मंगल के योग्य,

---

१ क० के। हुं हुं फ०। २ ख० पीत०।

मङ्गले मङ्गलार्हे च सर्वमङ्गलमङ्गले। सतां मङ्गलदे देवि सर्वेषां मङ्गलालये ॥३१॥
पूज्या मङ्गलवारे च मङ्गलाभीष्टदेवते। पूज्ये मङ्गलभूपस्य मनुवंशस्य संततम् ॥३२॥
मङ्गलाधिष्ठातृदेवि मङ्गलानां च मङ्गले। संसारमङ्गलाधारे मोक्षमङ्गलदायिनि ॥३३॥
सारे च मङ्गलाधारे पारे त्वं सर्वकर्मणाम्। प्रतिमङ्गलवारे च पूज्ये त्वं मङ्गलप्रदे ॥३४॥
स्तोत्रेणानेन शंभुश्च स्तुत्वा मङ्गलचण्डिकाम्। प्रतिमङ्गलवारे च पूजां कृत्वा गतः शिवः ॥३५॥
देव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं यः शृणोति समाहितः। तन्मङ्गलं भवेच्छश्वन्न भवेत्तदमङ्गलम् ॥३६॥
प्रथमे पूजिता देवी शंभुना सर्वमङ्गला। द्वितीये पूजिता देवी मङ्गलेन ग्रहेण च ॥३७॥
तृतीये पूजिता भद्रा मङ्गलेन नृपेण च। चतुर्थे मङ्गले वारे सुन्दरीभिश्च पूजिता ॥
पञ्चमे मङ्गलाकाङ्क्षैर्नरैर्मङ्गलचण्डिका ॥३८॥
पूजिता प्रतिविश्वेषु विश्वेशैः प्रतिमा सदा। ततः सर्वत्र संपूज्या सा बभूव सुरेश्वरी ॥३९॥
देवादिभिश्च मुनिभिर्मनुभिर्मानवैर्मुने। देव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं यः शृणोति समाहितः ॥४०॥
तन्मङ्गलं भवेच्छश्वन्न भवेत्तदमङ्गलम्। वर्धन्ते तत्पुत्रपौत्रा मङ्गलं च दिने दिने ॥४१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० मङ्गलचण्डिकोपा० तत्स्तोत्रादिकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

समस्त मंगलों की मंगल हो। हे देवि! तुम सज्जनों को मंगल दान करती हो और सभी की मंगलनिधि हो ॥३१॥ मंगल वार को तुम्हारी पूजा होती है, तुम मंगल की इष्ट देवता हो और मनुसे उत्पन्न राजा मंगल की निरंतर पूज्या हो ॥३२॥ हे मंगल की अधिष्ठात्री देवी! तुम मंगलों के लिए मंगल रूप हो, संसार के मंगलों का आधार और मोक्षमंगल देने वाली है ॥३३॥ तुम (सब का) सारभाग, मंगल का आधार, समस्त कर्मों से परे और प्रत्येक मंगल में पूज्य एवं मंगल देने वाली हो ॥३४॥ इसी स्तोत्र द्वारा शंकरजी मंगलचण्डिका की स्तुति कर के प्रत्येक मंगल के दिन उनकी पूजा करके गये ॥३५॥ देवी का यह मंगल-स्तोत्र, जो सावधान होकर सुनता है, उसका निरन्तर मंगल होता है और कभी भी अमंगल नहीं होता ॥३६॥ पहले मंगल को मंगला देवी की पूजा शम्भु ने की, दूसरे मंगल को मंगल ग्रह ने देवी की अर्चना की, तीसरे मंगल को भद्रा देवी की अर्चा राजा मंगल द्वारा हुई तथा चौथे मंगल वार के समय सुन्दरियों ने उनकी अर्चा सम्पन्न की एवं पाँचवें मंगल को मंगलाभिलाषी मनुष्यों ने मंगलचण्डिका की आराधना की। इस प्रकार प्रत्येक विश्व में जगदीश्वरों ने सदा उनकी अर्चना की। हे मुने! देवगण, मुनिगण, मनुवृन्द और मनुष्यों द्वारा पूजित होकर पश्चात् यह देवाधीश्वरी देवी चारों ओर सुपूजित हुई। देवी का मंगल-स्तोत्र जो सावधान होकर सुनता है, उसका निरन्तर मंगल ही होता है, अमंगल कभी नहीं और मंगल समेत उसके पुत्र-पौत्र दिन-दिन बढ़ते रहते हैं ॥३७-४१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद-विषयक मंगलचण्डिकोपाख्यान में मंगला देवी की पूजा और स्तोत्र आदि कथन नामक चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४४॥

---

१ क० भक्त्या। २ ख० पूजिता।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

उक्तं द्वयोरुपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम् । श्रूयतां मनसाख्यानं यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥१॥
कन्या भगवती सा च कश्यपस्य च मानसी । तेनेयं मनसादेवी मनसा या च दीव्यति ॥२॥
मनसा ध्यायते या वा परमात्मानमीश्वरम् । तेन सा मनसादेवी योगेनैतेन दीव्यति ॥३॥
आत्मारामा च सा देवी वैष्णवी सिद्धयोगिनी । त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥४॥
जरत्कारुशरीरं च दृष्ट्वा यां क्षणमीश्वरः । गोपीपतिर्नाम चक्रे जरत्कारुरिति प्रभुः ॥५॥
वाञ्छितं च ददौ तस्यै कृपया च कृपानिधिः । पूजां च कारयामास चकार च पुनः स्वयम् ॥६॥
स्वर्गे च नागलोके च पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः । भृशं जगत्सु गौरी सा सुन्दरी च मनोहरा ॥७॥
जगद्गौरीति विख्याता तेन सा पूजिता सती ॥७॥
शिवशिष्या च सा देवी तेन शैवीति कीर्तिता । विष्णुभक्ताऽतीव रम्या वैष्णवी तेन नारद ॥८॥
नागानां प्राणरक्षित्री जनमेजययज्ञके । नागेश्वरीति विख्याता सा नागभगिनी तथा ॥९॥
विषं संहर्तुमीशा सा तेन सा विषहारिणी । सिद्धं योगं हरात्प्राप तेनासौ सिद्धयोगिनी ॥१०॥
महाज्ञानं च गोप्यं च मृतसंजीविनीं पराम् । महाज्ञानयुतां तां च प्रवदन्ति मनीषिणः ॥११॥

अध्याय ४५

मनसा देवी का उपाख्यान

नारायण बोले— हे ब्रह्मपुत्र ! दोनों (देवियों) का उपाख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया; अब धर्म के मुख से मनसा का आख्यान जैसा सुना है, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! ॥१॥ वह भगवती कश्यप के मन से उत्पन्न होने के कारण मनसा देवी कहलाती है, जो मन से क्रीड़ा करती है। ॥२॥ योग द्वारा मन से परमात्मा ईश्वर का वह ध्यान करती है, अतः वह मनसा देवी योग से चमकती है ॥३॥ उस वैष्णवी एवं सिद्धयोगिनी ने आत्माराम (आत्मा में रमण करने वाली) होकर तीन युगों तक परमात्मा श्रीकृष्ण का कठिन तप किया ।४॥ अनन्तर ईश्वर गोपीपति ने क्षणमात्र जरत्कारु मुनि की तरह शरीर देखकर उसका 'जरत्कारु' नाम रख दिया। दयानिधान ने कृपा करके उसका मनोरथ सिद्ध करने के उपरान्त उसका पूजन कराया और स्वयं भी किया ॥५-६॥ वह स्वर्गलोक, नागलोक तथा ब्रह्मलोक से समस्त पृथ्वी अर्थात् सारे जगत् में अत्यन्त गौरी (गौरवर्ण), सुन्दरी और मनोहर थी, जिससे यह सती 'जगत्गौरी' होकर प्रख्यात एवं पूजित हुई। तथा शिव जी की शिष्या होने के नाते उस देवी को शैवी भी कहा गया है॥७-८॥ हे नारद ! अत्यन्त विष्णु-भक्त होने के नाते वह सुन्दरी वैष्णवी कही जाती है। जनमेजय के (सर्प) यज्ञानुष्ठान में नागों के प्राण की रक्षा उसी ने की ॥९॥ इसीलिए वह 'नागेश्वरी' नाम से भी प्रख्यात है। वह नागों की भगिनी है। इस प्रकार विष का संहार करने में समर्थ होने के नाते विषहारिणी और भगवान् शंकर से सिद्ध योग प्राप्त करने के नाते 'सिद्धयोगिनी' कही जाती है। वह गोप्य महाज्ञान और सर्वश्रेष्ठ मृत्संजीविनी जानती है,

आस्तीकस्य मुनीन्द्रस्य माता सा वै तपस्विनः । आस्तीकमाता विख्याता जरत्कारुरिति स्मृता ॥१२॥
प्रिया मुनेर्जरत्कारोर्मुनीन्द्रस्य महात्मनः । योगिनो विश्वपूज्यस्य जरत्कारोः प्रिया ततः ॥१३॥
ॐ नमो मनसायै ॥१४॥
जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी । वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी तथा ॥१५॥
जरत्कारुप्रियाऽऽस्तीकमाता विषहरीति च । महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता ॥१६॥
द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले च यः पठेत् । तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च ॥१७॥
नागभीते च शयने नागग्रस्ते च मन्दिरे । नागक्षते नागदुर्गे नागवेष्टितविग्रहे ॥१८॥
इदं स्तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नात्र संशयः । नित्यं पठेद्यस्तं दृष्ट्वा नागवर्गः पलायते ॥१९॥
दशलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् । स्तोत्रं सिद्धं भवेद्यस्य स विषं भोक्तुमीश्वरः ॥२०॥
नागौघं भूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः । नागासनो नागतल्पो महासिद्धो भवेन्नरः ॥२१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० मनसोपा० मनसास्तोत्रादिकथनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

इसीलिए विद्वत्समुदाय उसे महाज्ञानी कहता है। वह तपस्वी एवं मुनीन्द्र आस्तीक की माता है। आस्तीक की माता जरत्कारु विख्यात है। वह महात्मा, मुनीन्द्र एवं मुनि जरत्कारु की प्रिया थी जो विश्वपूज्य योगी थे। ॥१०-१३॥ 'ओं नमो मनसायै' यही मन्त्र है। जरत्कारु, जगद्गौरी, मनसा, सिद्धयोगिनी, वैष्णवी, नागभगिनी, शैवी, नागेश्वरी, जरत्कारुप्रिया, आस्तीकमाता, विषहरी तथा महाज्ञानयुता, उस विश्व पूजिता देवी के ये बारह नाम हैं ॥१४-१६॥ अतः पूजा के समय जो इन बारह नामों का उच्चारण करता है, उसे तथा उसके कुल में किसी को नाग भय नहीं होता है ॥१७॥ इस भाँति नाग भय देने वाले शयन, नागग्रस्त भवन, नाग के काटने पर, नागों के दुर्ग में और शरीर में नाग के लिपट जाने पर, इस स्तोत्र के पाठ करने से मनुष्य उससे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं। नित्य इसके पाठ करने वाले को देख कर नागसमूह भाग जाता हैं ॥१८-१९॥ इसके दस लाख जप करने से मनुष्यों को स्तोत्र-सिद्धि हो जाती है और जिसे स्तोत्र सिद्ध हो जाता है वह विष खाने में भी समर्थ होता है ॥२०॥ नागों को भूषणों की भाँति धारण कर के वह नागवाहन हो जाता है और महासिद्ध होने वाले मनुष्य तो नाग का आसन तथा नाग की शय्या भी बनाते हैं ॥२१॥

श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायणसंवादविषयक मनसा देवी के उपाख्यान में उसके स्तोत्रादि कथन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

पूजाविधानं स्तोत्रं च श्रूयतां मुनिपुंगव। ध्यानं च सामवेदोक्तं देवीपूजाविधानकम् ॥१॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥२॥
महाज्ञानयुतां चैव प्रवरां ज्ञानिनां सताम्। सिद्धाधिष्ठातृदेवीं च सिद्धां सिद्धिप्रदां भजे ॥३॥
इति ध्यात्वा च तां देवीं मूलेनैव प्रपूजयेत्। नैवेद्यैर्विविधैर्दीपैः पुष्पैर्धूपानुलेपनैः ॥४॥
मूलमन्त्रश्च वेदोक्तो भक्तानां वाञ्छितप्रदः। मूलकल्पतरुर्नाम प्रसिद्धो द्वादशाक्षरः ॥५॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहेति कीर्तितः। पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥६॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स सिद्धो जगतीतले। सुधासमं विषं तस्य धन्वन्तरिसमो भवेत् ॥७॥
ब्रह्मन्नाषाढसंक्रान्त्यां गुडाशाखासु यत्नतः। आवाह्य देवीं मासान्तं पूजयेद्यो हि भक्तितः ॥८॥
पञ्चम्यां मनसाख्यायां देव्यै दद्याच्च यो बलिम्। धनवान्पुत्रवांश्चैव कीर्तिमान्स भवेद्ध्रुवम् ॥९॥
पूजाविधानं कथितं तदाख्यानं निशामय। कथयामि महाभाग यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥१०॥

अध्याय ४६

मनसा देवी के स्तोत्र आदि

नारायण बोले—हे मुनिपुंगव! उसके पूजा-विधान, स्तोत्र और सामवेदानुसार उस देवी की पूजा में किया जाने वाला ध्यान भी बता रहा हूँ, सुनो! ॥१॥ श्वेत चम्पा पुष्प के समान रूपरंग वाली, रत्नों के भूषणों से भूषित, अग्नि की भाँति विशुद्ध वस्त्र पहने, नागों का यज्ञोपवीत धारण किये, महाज्ञानसुसम्पन्न सज्जन ज्ञानियों में अतिश्रेष्ठ, सिद्धों की अधिष्ठात्री देवी, सिद्धस्वरूप एवं सिद्धि देने वाली उस (मनसा) देवी की मैं सेवा कर रहा हूँ ॥२-३॥ इस प्रकार उस देवी का ध्यान करके मूलमन्त्र द्वारा अनेक भाँति के नैवेद्य, दीपक, पुष्प, धूप और लेपन से उसकी पूजा करे ॥४॥ मूल मन्त्र का मूल कल्पतरु नाम है, जो वेदोक्त, भक्तों का मनोरथ सिद्ध करने वाला, अतिसिद्ध और द्वादश (१२) अक्षर का है—'ओं ह्रीं श्रीं क्रीं ऐं मनसा देव्यै स्वाहा' यही मन्त्र है। इस के पाँच लाख जप करने से मनुष्यों को मन्त्र-सिद्धि प्राप्त होती है ॥५-६॥ और जिसे मन्त्र सिद्धि हो जाती है, वह समस्त विश्व में सिद्ध कहलाता है, उसके लिए विष अमृत तुल्य होता है और वह धन्वन्तरि के समान हो जाता है ॥७॥ हे ब्रह्मन्! आषाढ़ की संक्रांति के दिन कपास की शाखा में मनसा देवी का आवाहन कर जो भक्तिपूर्वक एक मास तक भक्तिपूर्वक पूजन करता है, तथा पञ्चमी के दिन जो मनसा देवी को बलि प्रदान करता है वह धनवान्, पुत्रवान् और यशस्वी निश्चित होता है ॥८-९॥ हे महाभाग! इस प्रकार मैंने उस देवी का पूजाविधान तुम्हें सुना दिया, अब धर्म के मुख से उसका आख्यान जैसा सुना है, कह रहा हूँ, सुनो ॥१०॥ हे नारद! पूर्वकाल में इस भूतल पर मनुष्यगण नागों के भय से अधमरे-से

---

१ क० वीमीशां तां पू०।

पुरा नागभयाक्रान्ता बभूवुर्मानवा भुवि । यान्यान्खादन्ति नागाश्च न ते जीवन्ति नारद ॥११॥
मन्त्रांश्च ससृजे भीतः कश्यपो ब्रह्मणाऽर्थितः । वेदबीजानुसारेण चोपदेशेन वेधसः ॥१२॥
मन्त्राधिष्ठातृदेवीं तां मनसां ससृजे ततः । तपसा मनसा तेन मनसा सा बभूव ह ॥१३॥
कुमारी सा च संभूय चागमच्छंकरालयम् । भक्त्या संपूज्य कैलासे तुष्टुवे चन्द्रशेखरम् ॥१४॥
दिव्यं वर्षसहस्रं च तं सिषेवे मुनेः सुता । आशुतोषो महेशश्च तां च तुष्टो बभूव ह ॥१५॥
महाज्ञानं ददौ तस्यै पाठयामास साम च । कृष्णमन्त्रं कल्पतरुं ददावष्टाक्षरं मुने ॥१६॥
लक्ष्मी माया कामबीजं ङेन्तं कृष्णपदं तथा । ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय ॥
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं पूजनक्रमम् ॥१७॥
स्तवनं सर्वपूज्यं च ध्यानं भुवनपावनम् । पुरश्चर्याक्रमं चापि वेदोक्तं सर्वसंमतम् ॥१८॥
प्राप्य मृत्युंजयाज्ञानं परं मृत्युंजयं सती । जगाम तपसे साध्वी पुष्करं शंकराज्ञया ॥१९॥
त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः । सिद्धा बभूव सा देवी ददर्श पुरतः प्रभुम् ॥२०॥
दृष्ट्वा कृशाङ्गीं बालां च कृपया च कृपानिधिः । पूजां च कारयामास चकार च हरिः स्वयम् ॥२१॥
वरं च प्रददौ तस्यै पूजिता त्वं भवे भव । वरं दत्त्वा च कल्याण्यै सद्यश्चान्तर्दधे विभुः ॥२२॥
प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना । द्वितीये शंकरेणैव कश्यपेन सुरेण च ॥२३॥

हो रहे थे। क्योंकि नाग लोग जिन्हें काट खाते थे वे जीवित नहीं बचते थे ॥११॥ अनन्तर ब्रह्मा के कहने पर भयभीत होकर कश्यप ने मन्त्रों का निर्माण किया, जो ब्रह्मा के उपदेश से वेदबीजानुसार ही थे ॥१२॥ अनन्तर उन्होंने तप करके मन द्वारा मनसा देवी को उत्पन्न किया जो मन्त्रों की अधिष्ठात्री देवी बनायी गयी और इसी से वह मनसा कहलाने लगी ॥१३॥ उत्पन्न होने के उपरान्त वह देवी शिव के निवास-स्थान कैलाश पर जाकर भक्तिपूर्वक चन्द्रशेखर शिव की पूजा करके स्तुति करने लगी ॥१४॥ उस मुनि-कन्या ने सहस्र दिव्य वर्ष तक शिव की आराधना की । पश्चात् आशुतोष महेश्वर उस पर प्रसन्न हुए ॥१५॥ हे मुने ! उन्होंने उसे महाज्ञान देकर सामवेद पढ़ाया और भगवान् श्रीकृष्ण का अष्टाक्षर मन्त्र कल्पतरु भी उसे प्रदान किया ॥१६॥ लक्ष्मी, माया, काम-बीज और चतुर्थ्यन्त कृष्ण पद जोड़ देने से बना मंत्र—'ओं श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः' त्रैलोक्यमंगल नामक कवच, पूजनक्रम, सर्वपूज्या स्तुति, लोक को पवित्र करनेवाला ध्यान और वेदानुसार सर्व-सम्मत पुरश्चरण (अनुष्ठान) का क्रम तथा उत्तम मृत्युञ्जय ज्ञान उस सती ने मृत्युञ्जय से प्राप्त कर उनकी आज्ञा से तप करने के लिए पुष्कर क्षेत्र को प्रस्थान किया ॥१७-१९॥ परमात्मा श्रीकृष्ण के लिए तीन युग तक उसने तप किया और सिद्ध होने पर उस देवी ने अपने सामने उस प्रभु का साक्षात् दर्शन भी किया ॥२०॥उपरान्त कृपानिधान भगवान् ने उस कृशांगी (दुर्बल देह वाली) नवयुवती को देखकर उसकी पूजा करायी और स्वयं भी की ॥२१॥ उसे वरदान भी दिया—'हे भवे ! तुम (समस्त विश्व में) पूजित हो।' उस कल्याणदायिनी को वर देकर भगवान् तत्क्षण अन्तर्हित हो गये ॥२२॥ इस प्रकार सर्वप्रथम परमात्मा कृष्ण ने उसकी पूजा की, दूसरे शंकर ने तब कश्यप और देवताओं ने। मनु, मुनि, नाग और मनुष्यों आदि ने भी उसकी पूजा

मनुना मुनिना चैव ह्याहिना मानवादिना । बभूव पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु[1] सुव्रता ॥२४॥
जरत्कारुमुनीन्द्राय कश्यपस्तां ददौ पुरा । अयाचितो मुनिश्रेष्ठो जग्राह ब्राह्मणाज्ञया ॥२५॥
कृत्वोद्वाहं महायोगी विश्रान्तस्तपसा चिरम् । सुष्वाप देव्या जघने वटमूले च पुष्करे ॥२६॥
निद्रां जगाम स मुनिः स्मृत्वा निद्रेशमीश्वरम् । जगामास्तं दिनकरः सायंकाल उपस्थितः ॥२७॥
संचिन्त्य मनसा तत्र मनसा च पतिव्रता । धर्मलोपभयेनैव चकाराऽऽलोचनं सती ॥२८॥
अकृत्वा पश्चिमां संध्यां नित्यां चैव द्विजन्मनाम् । ब्रह्महत्यादिकं पापं लभिष्यति पतिर्मम ॥२९॥
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् । स सर्वदाऽशुचिर्नित्यं ब्रह्महत्यादिकं लभेत् ॥३०॥
वेदोक्तमिति संचिन्त्य बोधयामास तं मुनिम् । स च बुद्ध्वा मुनिश्रेष्ठस्तां चुकोप भृशं मुनिः ॥३१॥

जरत्कारुरुवाच

कथं मे सुव्रते साध्वि निद्राभङ्गः कृतस्त्वया । व्यर्थं व्रतादिकं तस्या या भर्तुश्चापकारिणी ॥३२॥
तपश्चानशनं चैव व्रतं दानादिकं च यत् । भर्तुरप्रियकारिण्याः सर्वं भवति निष्फलम् ॥३३॥
यया पतिः पूजितश्च श्रीकृष्णः पूजितस्तया । पतिव्रताव्रतार्थं च पतिरूपी हरिः स्वयम् ॥३४॥

की। इस प्रकार वह सुव्रता देवी तीनों लोकों में पूजित हुई ॥२३-२४॥ पूर्व समय में कश्यप ने मुनीन्द्र जरत्कारु को उसे सौंप दिया था। यद्यपि मुनिश्रेष्ठ ने उसकी याचना नहीं की थी, किन्तु ब्राह्मण की आज्ञा से उन्हें उसको स्वीकार करना ही पड़ा ॥२५॥ विवाह करने के उपरान्त उस महायोगी ने चिरकाल की तपस्या से विश्राम करने की इच्छा प्रकट की और वटवृक्ष के नीचे उसी सती की जंघा पर शिर रख कर सो गये ॥२६॥ अनन्तर निद्राधीश्वर भगवान् को स्मरण करते हुए मुनि के निद्रामग्न (गाढ़ी नींद में) होने पर सूर्यास्त के कारण संध्या-काल उपस्थित हो गया ॥२७॥ उस समय पतिव्रता मनसा ने मन से भलीभाँति विचार कर धर्म के लोप के भय से पुनः निश्चय किया कि—'द्विजों की नित्य सायंकालिक संध्या को यदि हमारे पतिदेव सुसम्पन्न न करेंगे, तो उन्हें ब्रह्महत्या आदि पापों का भागी होना पड़ेगा ॥२८-२९॥ क्योंकि जो पूर्व (प्रातः) काल की संध्या और सायंकाल की संध्या सुसम्पन्न नहीं करता है, वह सदैव अपवित्र रहकर ब्रह्महत्या आदि का भागी होता है॥३०॥ वेदानुसार इन बातों को भलीभाँति सोच-विचार कर उसने मुनिदेव को जगा दिया, किन्तु जागने पर मुनिश्रेष्ठ उस पर अतिक्रुद्ध हो गये ॥३१॥

जरत्कारु बोले—हे सुव्रते! हे साध्वि! तुमने हमारी निद्रा क्यों भंग कर दी? जो स्त्री अपने पति का अपकार करती है, उसके व्रत आदि धर्माचरण व्यर्थ हो जाते हैं॥३२॥ उसी भाँति पति का अहित करने वाली स्त्री के तप, उपवास, व्रत, दान आदि जो कुछ सुकर्म रहते हैं, वे सब निष्फल हो जाते हैं॥३३॥ क्योंकि जिसने पति की पूजा की है, उसने (मानो) श्रीकृष्ण की ही पूजा की है, इस प्रकार पतिव्रता के व्रत के लिए भगवान् स्वयं पति रूप में प्राप्त होते हैं॥३४॥ इसलिए सम्पूर्ण दान, समस्त यज्ञ, सब तीर्थों के सेवन, सभी भाँति के तप, व्रत,

---

१ ख. सुश्रुता ।

सर्वदानं सर्वयज्ञं सर्वतीर्थनिषेवणम् । सर्वं तपो व्रतं सर्वमुपवासादिकं च यत् ॥३५॥
सर्वधर्मश्च सत्यं च सर्वदेवप्रपूजनम् । तत्सर्वं स्वामिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३६॥
सुपुण्ये भारते वर्षे पतिसेवां करोति या । वैकुण्ठं स्वामिना सार्धं सा याति ब्रह्मणः[1] शतम् ॥३७॥
विप्रियं कुरुते भर्तुर्विप्रियं वदति प्रियम् । असत्कुलप्रजाता या तत्फलं श्रूयतां सति ॥३८॥
कुम्भीपाकं व्रजेत्सा च यावच्चन्द्रदिवाकरौ । ततो भवति चाण्डाली पतिपुत्रविवर्जिता ॥३९॥
इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो बभूव स्फुरिताधरः । चकम्पे मनसा साध्वी भयेनोवाच तं पतिम् ॥४०॥

मनसोवाच

संध्यालोपभयेनैव निद्राभङ्गः कृतस्तव । कुरु शान्तिं महाभाग दुष्टाया मम सुव्रत ॥४१॥
शृङ्गाराहारनिद्राणां यश्च भङ्गं करोति च । स व्रजेत्कालसूत्रं च स्वामिनश्च विशेषतः ॥४२॥
इत्युक्त्वा मनसा देवी स्वामिनश्चरणाम्बुजे । पपात भक्त्या भीता च रुरोद च पुनः पुनः ॥४३॥
कुपितं च मुनिं दृष्ट्वा श्रीसूर्यं शप्तुमुद्यतम् । तत्राऽऽजगाम भगवान्संध्यया सह नारद ॥४४॥
तत्राऽऽगत्य मुनिश्रेष्ठमवोचद्भास्करः स्वयम् । विनयेन विनीतश्च तया सह यथोचितम् ॥४५॥

सभी उपवास आदि, समस्त धर्म, सत्य, समस्त देवों के अर्चन, ये सब (स्त्री के लिए) पति-सेवा की सोलहवीं कला (भाग) के भी समान नहीं होते हैं ॥३५-३६॥ अतः इस सुपुण्य प्रदेश भारतवर्ष में जो स्त्री अपने पति की सेवा करती है, वह पति के साथ वैकुण्ठ और ब्रह्मलोक को जाती है ॥३७॥ जो कुलीना (उत्तम कुल की) स्त्री नहीं है, वह सदैव पति का अहित करती है और उससे कटु वाणी (कड़वी बात) बोलती है, उसका फल कह रहा हूँ, सुनो ॥३८॥ वह उस पाप के नाते चन्द्र-सूर्य के समय तक कुम्भीपाक नरक में रहती है और अन्त में पति-पुत्र रहित चाण्डाली होती है ॥३९॥ इतना कहने पर भी उन महर्षिप्रवर के ओष्ठ फड़-फड़ा रहे थे। यह देखकर पतिव्रता मनसा भय से काँप उठी और पति से बोली ॥४०॥

मनसा बोली—हे महाभाग ! हे सुव्रत ! संध्या कर्म के लोप-भय से ही मैंने आपका निद्राभंग किया है, अतः मुझ दुष्टा को, आप शान्ति प्रदान करने की कृपा करें ॥४१॥ क्योंकि शृंगार, भोजन और निद्रा को जो भंग करता है, वह कालसूत्र नामक नरक में जाता है और स्वामी का यह अपराध करने पर विशेषतया उस फल की प्राप्ति होती है ॥४२॥ इतना कह कर मनसा देवी भयभीत होकर भक्ति से पति के चरण पर गिर पड़ी और बार-बार रुदन करने लगी ॥४३॥ हे नारद ! क्रुद्ध मुनि को श्री सूर्य को शाप देने के लिए प्रस्तुत देखकर भगवान् सूर्य सन्ध्या समेत वहाँ आ गये ॥४४॥ वहाँ पहुँच कर भगवान् भास्कर ने स्वयं संध्या समेत विनय-विनम्र होकर उन मुनिवर्य से यथोचित कहना आरम्भ किया ॥४५॥

---

१ ख. ०णः पदम् ।

श्रीसूर्य उवाच

सूर्यास्तसमयं दृष्ट्वा धर्मलोपभयेन च। त्वां बोधयामास विप्र नाहमस्तं गतस्तदा ॥४६॥
क्षमस्व भगवन्ब्रह्मन्मां शप्तुं नोचितं मुने। ब्राह्मणानां च हृदयं नवनीतसमं सदा ॥४७॥
तेषां क्षणार्धं क्रोधश्चेत्ततो भस्म भवेज्जगत्। पुनः स्रष्टुं द्विजः शक्तो न तेजस्वी द्विजात्परः ॥४८॥
[1]ब्रह्मणो वंशसंभूतः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा। श्रीकृष्णं भावयेन्नित्यं ब्रह्मज्योति सनातनम् ॥४९॥
सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा द्विजस्तुष्टो बभूव ह। सूर्यो जगाम स्वस्थानं गृहीत्वा ब्राह्मणाशिषम् ॥५०॥
तत्याज मनसां विप्रः प्रतिज्ञापालनाय च। रुदतीं शोकयुक्तां च हृदयेन विदूयता ॥५१॥
सा सस्मार गुरुं शंभुमिष्टदेवं हरिं विधिम्। कश्यपं जन्मदातारं विपत्तौ भयकर्शिता ॥५२॥
तत्राऽऽजगाम भगवान्गोपीशः शंभुरेव च। विधिश्च कश्यपश्चैव मनसा परिचिन्तितः ॥५३॥
विप्रो दृष्ट्वाऽभीष्टदेवं निर्गुणं प्रकृतेः परम्। तुष्टाव परया भक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥५४॥
नमश्चकार शंभुं च ब्रह्माणं कश्यपं तथा। कथमागमनं देवा इति प्रश्नं चकार सः ॥५५॥
ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा सहसा समयोचितम्। तमुवाच नमस्कृत्य हृषीकेशपदाम्बुजम् ॥५६॥

सूर्य बोले—हे विप्र! सूर्यास्त का समय देखकर धर्म के लोपभय से तुम्हें उसने जगाया है, मैं उस समय अस्त नहीं हुआ था। अतः हे भगवन्! हे ब्रह्मन्! हे मुने! क्षमा करें। आपको मुझे शाप देना भी उचित नहीं है; क्योंकि ब्राह्मणों का हृदय सदैव मक्खन की भाँति कोमल होता है ॥४६-४७॥ उनके क्षणमात्र के कोप से सारा जगत् भस्म हो सकता है, और फिर उसकी सृष्टि भी ये कर सकते हैं, क्योंकि ब्राह्मण से बढ़कर कोई दूसरा तेजस्वी नहीं होता ॥४८॥ अतः ब्रह्मा के कुल में उत्पन्न तथा ब्रह्मतेज से देदीप्यमान होकर ब्राह्मण को सनातन तथा ब्रह्म ज्योति रूप भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करनी चाहिये ॥४९॥ सूर्य की ऐसी बातें सुनकर वे ब्राह्मण देव प्रसन्न हो गये और सूर्य भी ब्राह्मण का आशीर्वाद लेकर अपने स्थान को चले गये ॥५०॥ किन्तु उस ब्राह्मण ने (अपनी) प्रतिज्ञा पालनार्थ मनसा देवी का त्याग कर दिया, जो हार्दिक दुःख से चिन्तित होकर रुदन कर रही थी। ॥५१॥ पश्चात् उसने अपने गुरु शिव, इष्टदेव विष्णु और ब्रह्मा का स्मरण किया, और उस विपत्ति के समय भय-भीत होकर जन्म देने वाले पिता कश्यप का भी स्मरण किया ॥५२॥ मनसा के विषय में विचारमग्न होते हुए गोपीपति भगवान् कृष्ण, शिव, ब्रह्मा और कश्यप सभी लोग वहाँ आये ॥५३॥ ब्राह्मण देव भी अपने इष्टदेव को, जो निर्गुण एवं प्रकृति से परे हैं, देखकर परा भक्ति के साथ स्तुति करते हुए बार-बार उन्हें प्रणाम करने लगे ॥५४॥ और शिव, ब्रह्मा तथा कश्यप को भी नमस्कार करके उनसे कहने लगे कि—'हे देवगण! आप का आगमन यहां कैसे हुआ?' ॥५५॥ ब्रह्मा ने उनकी बातें सुनकर भगवान् हृषीकेश के चरण-कमल को नमस्कार करने के उपरान्त उनसे

---

१ क. ब्राह्मणो ब्रह्मणो वंशः प्र०।

ब्रह्मोवाच

यदि त्यक्ता धर्मपत्नी धर्मिष्ठा मनसा सती। कुरुष्वास्यां सुतोत्पत्तिं धर्मसंस्थापनाय वै ॥५७॥
यतिर्वा ब्रह्मचारी वा भिक्षुर्वनचरोऽपि वा। जायायां च सुतोत्पत्तिं कृत्वा पश्चाद्भवेन्मुनिः ॥५८॥
अकृत्वा तु सुतोत्पत्तिं विरागी यस्त्यजेत्प्रियाम्। स्रवेत्तपस्तत्पुण्यं च चालिन्यां च यथा जलम् ॥५९॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा जरत्कारुर्मुनीश्वरः। चक्रे तन्नाभिसंस्पर्शं योगाद्वै मन्त्रपूर्वकम् ॥६०॥
तस्यै शुभाशिषं दत्त्वा ययुर्देवा मुदान्विताः। मुदान्विता च मनसा जरत्कारुर्मुदान्वितः ॥६१॥
मुनेः करस्पर्शमात्रात्सद्यो गर्भो बभूव ह। मनसाया मुनिश्रेष्ठ मुनिश्रेष्ठ उवाच ताम् ॥६२॥

जरत्कारुरुवाच

गर्भेणानेन मनसे तव पुत्रो भविष्यति। जितेन्द्रियाणां प्रवरो धर्मिष्ठो वैष्णवाग्रणीः ॥६३॥
तेजस्वी च तपस्वी च यशस्वी च गुणान्वितः। वरो वेदविदां चैव योगिनां ज्ञानिनां तथा ॥६४॥
स च पुत्रो विष्णुभक्तो धार्मिकः कुलमुद्धरेत्। नृत्यन्ति पितरः सर्वे जन्ममात्रेण वै मुदा ॥६५॥
पतिव्रता सुशीला या सा प्रिया प्रियवादिनी। धर्मिष्ठा पुत्रमाता च कुलजा कुलपालिका ॥६६॥
हरिभक्तिप्रदो बन्धुस्तदिष्टं यत्सुखप्रदम्। यो बन्धच्छित्स च पिता हरेर्वर्त्मप्रदर्शकः ॥६७॥

समयोचित बात कही ॥५६॥ यदि तुमने धर्ममूर्ति एवं पतिव्रता धर्मपत्नी मनसा का त्याग किया है, तो धर्मसंस्थापनार्थ इसमें पुत्रोत्पत्ति अवश्य करो ॥५७॥ क्योंकि योगी, ब्रह्मचारी, संन्यासी, वनचर (वानप्रस्थी) या मुनि धर्मपत्नी में पुत्रोत्पादन करने के पश्चात् (ही योगी आदि) होते हैं ॥५८॥ और यदि कोई विरागी बिना पुत्रोत्पत्ति किये अपनी पत्नी का त्याग करता है, तो चलनी से जल निकलने की भाँति उसके तप और पुण्य सब क्षीण हो जाते हैं ॥५९॥ अनन्तर मुनीश्वर जरत्कारु ने ब्रह्मा की ऐसी बातें सुनकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक योग द्वारा अपनी पत्नी का नाभिस्पर्श किया ॥६०॥ उपरान्त देवलोग भी प्रसन्न चित्त से उसे शुभ आशीर्वाद देकर चले गये। उपरान्त मनसा देवी प्रसन्न हुई और जरत्कारु भी प्रसन्न हुए ॥६१॥ हे मुनिश्रेष्ठ! मुनि के हाथ का स्पर्श होते ही वह उसी समय गर्भवती हो गयी। तब मुनिवर्य ने मनसा से कहा ॥६२॥

जरत्कारु बोले—हे मनसे! इस गर्भ से तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा, जो जितेन्द्रिय लोगों में सर्वश्रेष्ठ, धर्मात्मा, वैष्णवों में अग्रगण्य, तेजस्वी, तपस्वी, कीर्तिमान्, गुणवान्, वेदवेत्ताओं, योगियों और ज्ञानियों में श्रेष्ट होगा। ॥६३-६४॥ वह पुत्र भगवान् विष्णु का भक्त और धार्मिक होने के नाते कुल का उद्धार करेगा तथा उसके जन्म ग्रहण मात्र से प्रसन्न होकर सभी पितरगण नृत्य करेंगे ॥६५॥ क्योंकि पतिव्रता और उत्तम स्वभाव वाली स्त्री वही है, जो (पति को) प्रिय और मधुरभाषिणी हो, धार्मिक पुत्रमाता वही है, जो कुलीना होती हुई कुल का पालन करे ॥६६॥ बन्धु वही है, जो भगवान् की भक्ति प्रदान करे। इष्ट वही है, जो सुखप्रदायक हो। पिता वही है, जो (कर्म) बन्धन का नाश करते हुए भगवान् के मार्ग का प्रदर्शक हो ॥६७॥ गर्भ को धारण करने वाली स्त्री वही है, जो गर्भ-

सा गर्भधारिणी या च गर्भवासविमोचिनी। दयारूपा च भगिनी यमभीतिविमोचिनी ॥६८॥
विष्णुमन्त्रप्रदाता च स गुरुर्विष्णुभक्तिदः। गुरुश्च ज्ञानदाता च तज्ज्ञानं कृष्णभावनम् ॥६९॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यतो विश्वं चराचरम्। आविर्भूतं तिरोभूतं किं वा ज्ञानं तदन्यतः ॥७०॥
वेदजं योगजं यद्यत्तत्सारं हरिसेवनम्। तत्त्वानां सारभूतं च हरेरन्यद्विडम्बनम् ॥७१॥
दत्तं ज्ञानं मया तुभ्यं स स्वामी ज्ञानदो हि यः। ज्ञानात्प्रमुच्यते बन्धात्स रिपुर्यो हि बन्धदः ॥७२॥
विष्णुभक्तियुतं ज्ञानं न ददाति हि योगतः। स विप्रः शिष्यघाती च यतो बन्धान्न मोचयेत् ॥७३॥
जननीगर्भजात्क्लेशाद्यमताडनजात्तथा। न मोचयेद्यः स कथं गुरुस्तातो हि बान्धवः ॥७४॥
परमानन्दरूपं च कृष्णमार्गमनश्वरम्। न दर्शयेद्यः स कथं कीदृशो बान्धवो नृणाम् ॥७५॥
भज साध्वि परं ब्रह्माच्युतं कृष्णं च निर्गुणम्। निर्मूलं च पुराकर्म भवेद्यत्सेवया ध्रुवम् ॥७६॥
मया छलेन त्वं त्यक्ता दोषं मे क्षम्यतां प्रिये। क्षमायुतानां साध्वीनां सत्त्वात्क्रोधो न विद्यते ॥७७॥
पुष्करे तपसे यामि गच्छ देवि यथासुखम्। श्रीकृष्णचरणाम्भोजे ध्यानविच्छेदकातरः ॥७८॥
धनादिषु स्त्रियां प्रीतिः प्रवृत्तिपथगामिनाम्। श्रीकृष्णचरणाम्भोजे निःस्पृहाणां मनोरथाः ॥७९॥

वास में उसे पुनः (कभी) न आने दे (ऐसा उपदेश करे)। दयारूपा भगिनी वही है, जो यम के भय से मुक्त कराये ॥६८॥ गुरु वही है, जो भगवान् विष्णु का मन्त्र प्रदान करते हुए भगवान् की भक्ति प्रदान करे। गुरु वही है जो ज्ञानदाता हो और ज्ञान वही है जो भगवान् कृष्ण में (अटल) प्रेम उत्पन्न कराये ॥६९॥ क्योंकि यहाँ से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त चर-अचर समेत सारा विश्व जिससे प्रकट और अन्तर्हित होता है उससे अन्य से क्या ज्ञान मिलेगा? ॥७०॥ अतः वेदों और योग की क्रियाओं का सारभाग यही है कि भगवान् की सेवा करें। यही तत्त्वों का सार भाग भी है और हरि से अन्य तो विडम्बना मात्र है ॥७१॥ इस प्रकार मैं तो तुम्हें ज्ञान-दान दे चुका। स्वामी वही है, जो ज्ञान प्रदान करे क्योंकि ज्ञान के द्वारा ही कोई बन्धनमुक्त होता है, और शत्रु वही है, जो बन्धन प्रदान करे ॥७२॥ इसलिए भगवान् विष्णु की भक्ति समेत ज्ञान जो योग द्वारा प्रदान नहीं जो करता है वह ब्राह्मण शिष्य का नाशक है, क्योंकि वह बंधन से मुक्त नहीं कर पाता ॥७३॥ अतः जननी के गर्भ से और यमराज के यहां ताड़नजन्य दुःख से जो मुक्त न करा सके, वह गुरु, पिता और भाई कैसा? ॥७४॥ जो परमानन्द-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण का अनश्वर मार्ग न दिखा सके, वह मनुष्यों का बान्धव कैसा ? ॥७५॥ अतः हे साध्वि ! भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करो, जो परब्रह्म, अच्युत एवं गुणरहित हैं और जिसकी सेवा करने से पिछले जन्म का समस्त कर्म निश्चित नष्ट हो जाता है ॥७६॥ हे प्रिये ! मैंने कपटपूर्ण तुम्हारा त्याग किया है। अतः मेरे दोष को क्षमा करना। क्षमाशील पतिव्रताओं को सत्त्वगुण की अधिकता के नाते कोप नहीं होता है ॥७७॥ हे देवि ! मैं तप हेतु पुष्कर जा रहा हूँ। तुम भी सुखपूर्वक जाओ क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमल का ध्यान न करने से मैं दुःखी हो रहा हूँ ॥७८॥ प्रवृत्ति मार्ग पर चलने वाली स्त्रियों का प्रेम धन-पुत्रादि में ही लगा रहता है और निःस्पृह रहने वालों (पतियों) का यही मनोरथ रहता है कि हम सदैव भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल में लगे रहें ॥७९॥

जरत्कारुवचः श्रुत्वा मनसा शोककातरा। सा साश्रुनेत्रा विनयादुवाच प्राणवल्लभम् ॥८०॥

मनसोवाच

दोषेणाहं त्वया त्यक्ता निद्राभङ्गेन ते प्रभो। यत्र स्मरामि त्वां बन्धो तत्र मामागमिष्यसि ॥८१॥
बन्धुभेदः क्लेशतमः पुत्रभेदस्ततः परः। प्राणेशभेदः प्राणानां विच्छेदात् सर्वतः परः ॥८२॥
पतिः पतिव्रतानां च शतपुत्राधिकः प्रियः। सर्वस्माच्च प्रियः स्त्रीणां प्रियस्तेनोच्यते बुधैः ॥८३॥
पुत्रे यथैकपुत्राणां वैष्णवानां यथा हरौ। नेत्रे यथैकनेत्राणां तृषितानां यथा जले ॥८४॥
क्षुधितानां यथाऽन्ने च कामुकानां यथा स्त्रियाम्। यथा परस्वे चौराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥८५॥
विदुषां च यथा शास्त्रे वाणिज्ये वणिजां यथा। तथा शश्वन्मनः कान्ते साध्वीनां योषितां प्रभो ॥८६॥
इत्युक्त्वा मनसा देवी पपात स्वामिनः पदे। क्षणं चकार क्रोडे तां कृपया च कृपानिधिः ॥८७॥
नेत्रोदकेन मनसां स्नापयामास तां मुनिः। साऽश्रुणा च मुनेः क्रोडं सिषेवे भेदकातरा ॥८८॥
तदा ज्ञानेन तौ द्वौ च विशोकौ च बभूवतुः। स्मारं स्मारं पदाम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः ॥८९॥
जगाम तपसे विप्रः स कान्तां सुप्रबोध्य च। जगाम मनसा शंभोः कैलासं मन्दिरं गुरोः ॥९०॥
पार्वती बोधयामास मनसां शोककर्शिताम्। शिवश्चातीव ज्ञानेन शिवेन च शिवालये ॥९१॥

जरत्कारु की ऐसी बातें सुनकर मनसा ने शोकाकुल होकर आँखों में आँसू भर लिया और अपने प्राणवल्लभ से सविनय कहा ॥८०॥

मनसा बोली—हे प्रभो! आप का मैंने निद्राभंग किया है इसी दोष से आपने मेरा त्याग किया है, किन्तु हे बन्धो! जहाँ जिस समय मैं आपका स्मरण करूँ, वहाँ मेरे पास अवश्य आ जाइएगा ॥८१॥ बन्धु का वियोग अति दुःखदायक होता है और उससे बढ़ कर पुत्र-वियोग होता है। किन्तु अपने प्राणेश का वियोग तो स्त्रियों के लिए उनके प्राण-वियोग से भी बढ़कर होता है ॥८२॥ क्योंकि पतिव्रताओं के लिए पति, सैकड़ों पुत्रों से अधिक प्रिय होता है। इस प्रकार स्त्रियों को पति सबसे अधिक प्रिय होता है, इसीलिए विद्वान् लोग उसे स्त्रियों का प्रिय कहते हैं ॥८३॥ जिस प्रकार एक पुत्र वालों का मन (अपने) पुत्र में, वैष्णवों का भगवान् में, एक नेत्र वालों का नेत्र में, तृषित (प्यासे) का जल में, क्षुधित (भूखे) का अन्न में, कामी का स्त्री में लगा रहता है और दूसरे के धन में चोरों का, जार (व्यभिचारी) पुरुष में व्यभिचारिणी स्त्री का, शास्त्र में विद्वानों का एवं व्यापार में बनियों का मन लगा रहता है, उसी भाँति पतिव्रता स्त्रियों का मन निरन्तर अपने कान्त में लगा रहता है ॥८४-८६॥ इतना कह कर मनसा देवी पति के चरण पर गिर पड़ी। अनन्तर कृपानिधान मुनि ने कृपा करके उसे क्षणमात्र के लिए अपनी गोद में उठा लिया ॥८७॥ और अपने अश्रुपात से मनसा को स्नान-सा करा दिया। एवं वियोग दुःख से उसने भी अपने आँसुओं से पति की गोद को भिगो दिया ॥८८॥ किन्तु उसी समय पुनः दोनों प्रबल ज्ञान द्वारा शोकरहित हो गये और परमात्मा श्रीकृष्ण के चरण-कमल का बार-बार स्मरण करने लगे ॥८९॥ उपरान्त ब्राह्मण देव ने प्रेयसी (मनसा) को भलीभाँति ज्ञान द्वारा उद्बुद्ध करके तप के लिए प्रस्थान किया, और मनसा भी गुरु मन्दिर—शिवजी के कैलाश—की ओर चल पड़ी ॥९०॥ वहां शिवालय में पहुंचने पर पार्वती ने शोकग्रस्त उस मनसा को भलीभाँति बोध कराया और शिव ने भी कल्याण-प्रद बोध प्रदान किया ॥९१॥ अनन्तर उस पतिव्रता ने अति प्रशस्त दिन के मांगलिक क्षण में पुत्र को जन्म दिया,

सुप्रशस्ते दिने साध्वी सुषुवे मङ्गले क्षणे। नारायणांशं पुत्रं च ज्ञानिनां योगिनां गुरुम् ॥९२॥
गर्भस्थितो महाज्ञानं श्रुत्वा शंकरवक्त्रतः । स बभूव महायोगी योगिनां ज्ञानिनां गुरुः ॥९३॥
जातकं कारयामास वाचयामास मङ्गलम् । वेदांश्च पाठयामास शिवाय च शिवः शिशोः ॥९४॥
[1]मणिरत्नत्रिकोटिं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ शिवः । पार्वती च गवां लक्षं रत्नानि विविधानि च ॥९५॥
शंभुश्च चतुरो वेदान्वेदाङ्गानितरांस्तथा । बालकं पाठयामास ज्ञानं मृत्युंजयं परम् ॥९६॥
भक्तिरास्ते स्वकान्ते चाभीष्टे देवे हरौ गुरौ। यस्यास्तेन च तत्पुत्रो बभूवास्तीक एव च ॥९७॥
जगाम तपसे विष्णोः पुष्करं शंकराज्ञया । संप्राप्य च महामन्त्रं तपश्च परमात्मनः ॥९८॥
दिव्यं वर्षत्रिलक्षं च तपस्तप्त्वा तपोधनः । आजगाम महायोगी नमस्कर्तुं शिवं प्रसूम् ॥९९॥
शंकरं च नमस्कृत्य पुरः कृत्वा च बालकम्। सा चाऽऽजगाम मनसा कश्यपस्याऽऽश्रमं पितुः ॥१००॥
तां सपुत्रां सुतां दृष्ट्वा मुदं प्राप प्रजापतिः। शतलक्षं च रत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुने ॥१०१॥
ब्राह्मणान्भोजयामास त्वसंख्याञ्छ्रेयसे शिशोः। अदितिश्च दितिश्चान्या मुदं प्रापुः परं तथा ॥१०२॥
सा सपुत्रा च सुचिरं तस्थौ तातालये तदा । तदीयं पुनराख्यानं वक्ष्ये त्वं तन्निशामय ॥१०३॥

जो भगवान् नारायण का अंश, ज्ञानियों और योगियों का गुरु था ॥९२॥ गर्भ में स्थित रहने के समय ही उस बालक ने शंकर के मुख से महाज्ञान सुन लिया था, जिससे वह ज्ञानियों और योगियों का गुरु एवं महायोगी हुआ ॥९३॥ शिव ने उस शिशु के कल्याणार्थ उसका जातकर्म, मंगल (स्वस्ति) वाचन और वेदों का पाठ कराया ॥९४॥ अनन्तर शिव ने तीन करोड़ रत्नों का दान ब्राह्मणों को प्रदान किया और पार्वती ने भी एक लाख गौ और अनेक भाँति के रत्नों का दान किया ॥९५॥ (कुछ समय व्यतीत होने पर) शिव ने स्वयं वेदांग समेत चारों वेद और इतर का भी अध्ययन उस बालक को कराया तथा परमोत्तम मृत्युञ्जय ज्ञान प्रदान किया। ॥९६॥ अपने स्वामी, इष्टदेव, विष्णु और गुरु में मनसा की अत्यन्त भक्ति थी, उसी कारण उसका पुत्र 'आस्तीक' नाम से प्रख्यात हुआ ॥९७॥ तदुपरान्त शंकर की आज्ञा से भगवान् विष्णु का तप करने के लिए परमात्मा का महामन्त्र प्राप्त कर वह बालक पुष्कर चला गया ॥९८॥ वहाँ वह तपस्वी महायोगी दिव्य तीन लाख वर्ष तक तप करके पुनः प्रभु शिव तथा माता को नमस्कार करने के लिए कैलाश आया ॥९९॥ वहाँ शंकर को नमस्कार करने के अनन्तर उसकी माता मनसा अपने बालक को आगे कर के अपने पिता कश्यप के आश्रम में आयी ॥१००॥ हे मुने ! प्रजापति कश्यप पुत्र समेत कन्या को देख कर अति प्रसन्न हुए और उन्होंने सौ लाख रत्नों का दान ब्राह्मणों को प्रदान किया ॥१०१॥ पुनः उस शिशु के कल्याणनार्थ उन्होंने असंख्य ब्राह्मणों को भोजन कराया तथा दिति-अदिति और अन्यों को भी उसे देख कर अति हर्ष प्राप्त हुआ ॥१०२॥ इस प्रकार मनसा ने पुत्र समेत अपने पिता के घर चिरकाल तक निवास किया। अब वहाँ का भी आख्यान तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥१०३॥

---

१ ख. रत्नत्रिकोटिलक्षं च ।